

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

श्रीहरिः

परमार्थकी पगडंडियाँ



हनुमानप्रसाद पोद्दार

पुस्तक प्राप्ति स्थान—
गीतावाटिका,
पो० गीतावाटिका (गोरखपुर)

अक्षय तृतिया सं० २०३४, प्रथम संस्करण ५०००

मूल्य एक रुपया पचास पैसे

श्रीहरिः

निवेदन

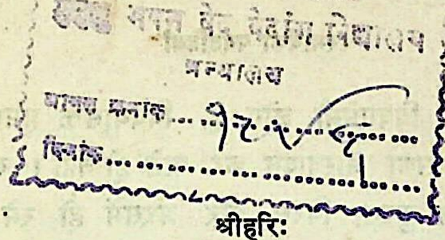
जीवनमें शाश्वत शान्ति और आनन्द चाहनेवाले पथिकोंके लिये ये पगडंडियाँ बड़ी सुगमतासे उन्हें अपने लक्ष्यपर पहुँचानेवाली हैं। परमश्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार जिज्ञासुओंके जीवनकी उलझनोंको दूर करने एवं उन्हें परमार्थ-पथपर बढ़ानेके लिये समय-समयपर बड़े सरल और महत्त्वपूर्ण उपाय बताया करते थे। उन सबका संग्रह 'कल्याण'-में 'परमार्थकी पगडंडियाँ' शीर्षकसे प्रकाशित होता रहा है। उस संग्रहके कुछ भागको इस पुस्तकमें संगृहीत किया गया है।

'संत उदय संतत सुखकारी--संतका आविर्भाव त्रस्त मानवको शीतलताप्रदान करनेके लिये होता है।' परमश्रद्धेय श्रीभाईजीकी वाणी चिर-संतप्त मानव-मात्रको सहज ही सन्मार्गपर लानेवाली तथा शान्ति प्रदान करनेवाली है। भटकते हुए राहीके लिये यह पुस्तक उसे सच्चे मार्ग—परमार्थकी ओर ले जानेवाली है। इन पगडंडियोंपर चलकर मानव शान्ति और आनन्दके साथ जीवनके परम लक्ष्य भगवत्प्राप्ति अथवा भगवत्-प्रेमकी प्राप्तिकर सकता है। यह पुस्तक केवल परमार्थके पथिकोंके लिये ही नहीं, अपितु मानवमात्रके लिये बहुत उपयोगी एवं लाभदायक है।

विनीत,

एक दीन





श्रीहरिः

परमार्थकी पगडंडियाँ

[१]

जिसको वास्तविक रस कहते हैं, जिसका नाम रस है, वह रस केवल और केवल भगवान् हैं। जगत्में जितने भी रस माने गये हैं, भोजनके रस, काव्यके रस—इन सभी अन्यान्य प्रकारके रसोंका रस-शास्त्रोंमें बड़ा भेद किया गया है। हमारे यहाँ भी और पाश्चात्त्य विद्वानोंने भी इस-पर बड़ा विचार किया है, पर इस रसका जो मूल स्रोत है, मूल आकर है, खान है, वह है—भगवान्। 'रसो वै सः।—रस वे ही हैं, और कोई नहीं।' उनको छोड़कर हम जगत्में जिन रसोंको रस-नाम देते हैं—वे कोई कुरस, कोई विरस और कोई अरस हैं—कुरस—कुत्सित रस, विरस—विपरीत रस और अरस—रसहीनता। अतएव जगत्में जितने भी आनन्द हैं, जितने भी सुख हैं, उन सभी सुखोंका, आनन्दका मूल तो एक भगवान् हैं। भगवान् आनन्दस्वरूप हैं और इन भगवान्के आनन्दस्वरूपको छोड़कर जितने भी आनन्द हैं, आह्लाद हैं, रस हैं, वे सब-के-सब रस नहीं हैं—कुरस हैं, विरस हैं, अरस हैं।

जितने भी विषयप्रेमी लोग हैं, विषयासक्त हमलोग भी, कभीं रसका आस्वादन कर पाते ही नहीं। रसके नामपर हम कुरस, विरस और अरसमें ही रमे रह जाते हैं एवं उसीको हम रस मान लेते हैं। हमारी बुद्धि विपरीत हो रही है। इस तमसाच्छन्न विपरीत बुद्धिके कारण हम भगवान्‌की ओर आकर्षित न होकर जगत्‌के भोगोंकी ओर आकर्षित होते हैं, जिनमें रस है ही नहीं; उन्हींमें रचे-पचे रहते हैं, यह हमारा दुर्भाग्य है।

× × ×

भगवान् जिस रसका आस्वादन करते हैं, वह रस किसी दूसरेका रस नहीं है; वह रस किसी भक्तके अपने हृदयका रस नहीं है; वह तो, जिस भक्तने अपने हृदयको सर्वथा खाली कर दिया हो—भगवान्‌के रसके लिये, उस भक्तके हृदयमें भगवान् अपना ही रस उँड़ेल देते हैं। प्रेममय भगवान्, प्रेमास्पद भगवान्, प्रेष्ठ भगवान्, प्रियतम भगवान्, रसमय भगवान् अपने स्वरूपभूत रसको उस भक्तके हृदयमें भर देते हैं। भर क्यों देते हैं ? यदि केवल रस भरा हुआ हो और रसका कोई आस्वादन करनेवाला न हो, तब वह रस व्यर्थ है। जिस रसका कोई उपयोग न हो, जहाँ वह रस अपने ही स्वरूपमें प्रतिष्ठित है, वहाँ वह उनके आस्वादनकी वस्तु नहीं है; उसका न तो कोई उपभोक्ता है, न उपभोग्य ही है; वहाँ वह अपने स्वरूपमें

नित्य प्रतिष्ठित है। तथापि भगवान् स्वयं उस रसका आस्वादन करते हैं।

× × ×

भगवान्‌की जब यह इच्छा होती है कि स्वयं अपने रसका अपने ही पान करें, अपनी लीलामें अपने-आप ही लीलायमान हों, अपने आनन्दसे अपने-आप ही आनन्द-लाभ करें—तब वे क्या करते हैं? उन भक्तोंके हृदयमें, जिनमें अहंता-ममता-कामना-वासना-लालसा, इच्छा-स्पृहा-आसक्ति आदि किसी प्रकारकी कोई भी चीज नहीं रह जाती, जिनका हृदय सर्वथा-सर्वदा भगवान्‌के रसका भण्डार बननेके लिये खाली हो जाता है, उन हृदयोंको स्वयं भगवान् अपने परम मधुर दिव्य रससे भर देते हैं—परिपूर्ण कर देते हैं एवं स्वयं फिर उस रसके पूर्ण उपभोक्ता बन जाते हैं।

× × ×

प्रेम न बाड़ी नीपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा-परजा जेहि रुचै, सीस देहि लै जाय॥

—प्रेम न किसी बाजारमें बिकता है, न उसकी कोई हाट लगती है; न वह किसी शास्त्रसे मिलता है, न वह किसी संतसे मिलता है। प्रेम मिलता है—केवल प्रेमस्वरूप भगवान्‌से, प्रेम मिलता है—प्रेमसे तथा प्रेम मिलता है—प्रेमकी चाहसे। जब यह प्रेम हृदयमें आयेगा तो एक विचित्र रसकी अनुभूति होगी। वह अनुभूति क्या होगी?

यह जगत् फीका लगने लगेगा—नीरस तथा इसका अस्तित्व लुप्त हो जायगा। बस, यही कसौटी है।

× × ×

भगवान्‌का प्रेम प्राप्त करना हो, उनका सांनिध्य प्राप्त करना हो, उनको हृदयमें बसाना हो तो हृदयको खाली करो—यही 'गोपीभाव' प्राप्त करनेकी साधना है। बड़ी सुन्दर साधना है—हृदयको खाली करो, जिसमें वे स्वतन्त्रताके साथ बिना किसी संकोचके, हिचकके, बाधाके अपना स्वर बजा सकें। कहीं गाँठ रह गयी बीचमें और उसे छुड़ाया नहीं तो उनके जो स्वर हैं, उन स्वरोंमें रस नहीं आयगा; बाधा आ जायगी। गोपी बनना हो, अर्थात् भगवान्‌का प्रेमी भक्त बनना हो तो एक ही उपाय है कि जगत्‌को—इस जगत्‌के तथा परलोकके भोगोंको हृदयसे निकाल दो।

× × ×

जिसके हृदयमें ज्यों-का-त्यों जगत्‌का आकर्षण बना है और वह यदि अपनेको भगवान्‌का प्रेमी समझता है तो वह भ्रममें है। जैसे सूर्योदय होनेपर पटवीजन (जुगनू)-की रोशनीका महत्त्व नहीं रहता और जैसे सूर्योदय होनेपर रात्रि नहीं रहती, वैसे ही जब भगवान्‌का प्रेम, भगवद्-रस हृदयमें आ जाता है तो जगत्‌का आकर्षण फीका लगने लगता है। फीका लगनेके बाद बिना हटाये, बिना प्रयासके यह जगत् सर्वथा हट जाता है। जगत्‌का यह दृश्य-प्रपञ्च बिल्कुल ही नहीं रह जाता; एकदम विलुप्त हो जाता।

और रह जाते हैं केवल और केवल भगवान् एवं उनका लहराता हुआ प्रेम-समुद्र। जहाँ ऐसी स्थिति होती है, वहीं उस समुद्रमें आकर श्यामसुन्दर लीला करते हैं, अवगाहन करते हैं। यही प्रेमी और प्रेमास्पदका 'नित्य रास' है, नित्य विहार है। यह नित्य चलता है; इसमें जो भी आना चाहे, सभी आ सकते हैं; पर उसके लिये त्याग करना पड़ेगा। यदि यह प्रेम प्राप्त करना है तो हृदयको सर्वथा खाली कीजिये; प्रेम मिल जायगा।

अपने अन्तःकरणको सर्वथा और सर्वदा खाली करना है। इसमें जरा-सी भी यदि कोई दूसरी चीज रहती है, तबतक भगवान् अपना रस उँड़ेलते नहीं, रस उसमें भरते नहीं। तो खाली करनेका अर्थ क्या है? इसको मोटी भाषामें कहें—अहंता, ममता, कामना, वासना, स्पृहा, लालसा, इच्छा, आसक्ति इत्यादि—सबको भगवान्‌के साथ जोड़ देना है। ये भावनाएँ अपने-आपमें दूषित नहीं हैं; दूषित है—इनका भोग-सम्पर्क। भगवान्‌से प्रेमकी इच्छा दूषित नहीं है; भोगकी इच्छा दूषित है।

वही इच्छा, वही कामना यदि भगवान्‌के प्रेमकी है तो ऋषि-मुनि-वाञ्छनीय है और यदि भोगकी है तो भले वह इन्द्रका पद हो, त्याज्य है। जहाँपर भोगासक्ति है, भोग-वासना है, भोग-कामना है, भोग-इच्छा है—वहाँ भगवान्‌का रस नहीं आता। और चीजें आ सकती हैं, भगवान्‌का रस

कदापि नहीं आ सकता। भगवान्‌के रसके लिये तो गोपी बनना होगा, केवल 'श्रीकृष्णमानस' बनना पड़ेगा।

× × ×

एकान्त एवं अनन्य भावसे, नित्य अबाध गतिसे उन नित्य सुन्दर, नित्य मधुर भगवान्‌को अंदर भरो। बार-बार याद करते-करते जितने-जितने वे अंदर भरते जायँगे, जितनी-जितनी उन्हें अंदर भरनेकी अपने मनकी उत्कण्ठाको, मनकी इच्छाको, अपनी चाहको हम तीव्र बनायेंगे, उतने-उतने वे जल्दी हृदयमें भरेंगे। यदि हम लापरवाही करेंगे तो जगत् बाहर निकलेगा नहीं। ये भगवान्—जो बुलाना चाहता है, उसके तो पीछे-पीछे भागते हैं और जो नहीं बुलाना चाहता, उसके पास फटकते ही नहीं। अतः परम सुन्दर, परम मधुर भगवान्‌को अंदर भरो, जगत् निकल जायगा। जगत् तो पोला है, भगवान् कूटस्थ हैं; भगवान् भरे कि जगत्‌को निकला समझो। हृदय खाली हो गया तो ये सुन्दर मधुर भगवान् अपना रस, अपना प्रेम हृदयमें भर देंगे।

× × ×

भगवान् जरा भी दूर नहीं हैं। जो अपनेको सदा भगवान्‌के समीप समझता है तथा उनकी समीपताका सदा अनुभव करता है, उससे भगवान् कभी दूर नहीं हो सकते। वे सदा उसके हृदयमें बसे रहते हैं, उसके आस-पास रहते

दिन रहकर उसे सुखी करते रहते हैं और स्वयं लोभीके धनकी तरह निरन्तर उसे अपने हृदयमें बसाये रखते हैं तथा उसके पवित्र प्रेम-रस-सुधाका आस्वादन करते रहते हैं—

'ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥'

भगवान्‌की अहैतुकी कृपाका, उनके सहज सौहार्दका, उनके निर्मल प्रेमका, उनकी अप्रतिम प्रीतिका सदा अनुभव करते रहना चाहिये। वे सदा समीप हैं, इसका भी अनुभव करते रहना चाहिये।

केवल मात्र श्रीभगवान्‌में ही प्रेम करना चाहिये। भगवान् सदा सर्वत्र विद्यमान हैं। उनको सदा समीप समझकर सारे कार्य उनका स्मरण करते हुए, उन्हींकी प्रीतिके लिये करने चाहिये। जन्मके पहले वे साथ थे और मरनेके बाद भी वे साथ रहेंगे। मनुष्यका शरीर क्षण-भङ्गुर, विनाशी और कर्मजनित पाञ्चभौतिक है; वह तो नष्ट होगा ही। अतः उसमेंसे आसक्ति हटाकर नित्य अविनाशी परम सच्चिदानन्दघन भगवान्‌में ही आसक्ति-ममता करनी चाहिये; उन्होंको जीवनका परम लक्ष्य मानना और जानना चाहिये। हम सब हैं तो उन्हींके, पर भूले हुए हैं। अतएव उस नित्य सम्बन्धको स्मरण करके उन्हीके हो जाना चाहिये और इसमें हमें परस्पर एक-दूसरेकी सहायता करनी चाहिये।

भगवान्‌की मधुर स्मृति ही हमारा जीवन बन जाय—संसारमें किसी भी प्राणि-पदार्थ-परिस्थितिमें हमारी ममता-आसक्ति न रहे। सारी ममता-आसक्ति एकमात्र भगवच्चरणोंमें हो जाकर केन्द्रित और स्थिर हो जाय।

× × ×

भगवान्‌में विश्वास करनेवाले व्यक्तिको भगवान्‌के प्रत्येक मङ्गल-विधानमें परम प्रसन्न रहना चाहिये। हम कहीं रहें, कैसे भी रहें, हैं भगवान्‌की 'संनिधि'में ही, बस, भगवान्‌का स्मरण होता रहे। एक भक्तने कहा है—

दिवि वा भुवि वा ममास्तु वासो नरके वा नरकान्तक प्रकामम्।
अवधीरितशारदारविन्दौ चरणौ ते मरणेऽपि चिन्तयामि॥

(श्रीमुकुन्दमाला-८)

'हे नरकनाशक! मैं स्वर्ग, पृथ्वी या नरकमें ही क्यों न रहूँ, किन्तु शरत्कालीन कमलको तिरस्कृत करनेवाले आपके चरण-युगलको मरते समय भी याद करता रहूँ।'

अतएव हमलोगोंको सदा-सर्वदा भगवान्‌के चरण-कमलोंका स्मरण करते हुए प्रसन्न रहना चाहिये। शरीर कहीं भी रहे मन भगवान्‌में बसा रहे, भगवान् हमारे मनमें बसे रहें। शरीरकी तो स्थिति प्रारब्धानुसार होगी; वह जहाँ जैसा हो, होता रहे; प्रभुकी प्रीति तथा कृपा सदा अखण्ड बनी रहे—

कुटिल करम लै जाहिं मोहि जहँ-जहँ अपनी बरिआई।
तहँ-तहँ जनि छिन छोह छाँडियो कमठ अंडकी नाईं॥

× × ×

हमारा पवित्र जीवन प्रभुमय हो जाय। संसारकी सारी कामना-वासना हमारे हृदयसे बिल्कुल निकल जाय। संसारासक्तिका लेश भी हममें न रहे। हमारे मनकी प्रत्येक सूक्ष्म-से-सूक्ष्म तथा स्थूल-से-स्थूल वृत्ति निरन्तर भगवान्‌में ही लगी रहे। हमारे मन-इन्द्रियकी प्रत्येक चेष्टा केवल और केवल भगवान्‌के लिये ही हो। यदि भगवान्‌की कृपापर पूर्ण विश्वास करके हम अपनेको बिना किसी शर्तके उनके चरणोंपर लुटा दें तो ऐसा होना कोई बड़ी बात नहीं है। जब महापापी भी भगवान्‌की अहैतुकी कृपासे तुरंत साधु, धर्मात्मा, शाश्वती शान्तिका निश्चित अधिकारी और भगवान्‌का कभी न नष्ट होनेवाला 'भक्त' बन सकता है, तब हमलोग क्यों नहीं बन सकते? हमारा निश्चय सम्यक् होना चाहिये; अर्थात् भगवान्‌की अहैतुकी कृपापर पूर्ण विश्वास करके हमें अनन्यभावसे उनके शरण हो जाना चाहिये। ऐसा होनेपर निश्चय ही हमारा कार्य सफल हो जायगा।

भगवान् मङ्गलमय हैं। यदि हम हृदयसे उनसे प्रेम चाहेंगे तो वे क्यों नहीं देंगे?

श्रीभगवान्‌का स्मरण-चिन्तन निरन्तर बना रहे और वह केवल प्रेमजनित हो, उसमें किसी भी प्रकारकी

विषयासक्ति, भोग-कामना या वासनाका लेश न हो, ऐसा प्रयत्न करना चाहिये और भगवान्‌से यही प्रार्थना करनी चाहिये—आपका प्रेमजनित अनन्य स्मरण होता रहे। आपमें ही मेरी अनन्य ममता केवल पवित्रतम प्रेमके कारण हो जाय। संसारमें, शरीरके लिये जो कुछ भी होना हो, होता रहे, मैं उसकी ओरसे सर्वथा उदासीन रहूँ; जीवन-मरण—सभीमें समता बनी रहे। सारी ममता केवल आपमें ही आकर केन्द्रित हो जाय—

'तुलसी ममता राम सों, समता सब संसार।'

×　　　×　　　×

भगवान्‌को जो जितना चाहता है, भगवान् उसको उतना ही चाहते हैं। परंतु प्रेमीके प्रेमका बदला तो वे चुका नहीं सकते; उसके तो वे ऋणी ही रहते हैं। भगवान् पात्रता नहीं देखते; वे तो हृदयके पवित्र भाव तथा एकान्त अनन्य चाहको ही देखते हैं।

मेरा तो यही निवेदन है कि नित्य-निरन्तर भगवान्‌के मधुर मङ्गल स्मरणमें लगे रहो। संसारका कोई पदार्थ, कोई अवस्था, कोई स्थिति, कोई प्राणी, कोई सुख-दुःख— तुम्हें इस स्मृति-सुख-सागरसे न निकाल सके। भगवान्‌की मधुर मङ्गल स्मृति हमारा जीवन बन जाय। मछलीका

'जीवन' जल है—इसी प्रकार भगवान्‌की परम मधुर मङ्गलमयी स्मृति हमारा 'जीवन' हो।

सदा-सर्वदा भगवान्‌की अनन्त सहज कृपाका अनुभव करना चाहिये। वह कृपा 'हमारी सम्पत्ति' है—ऐसा दृढ़ निश्चय रखना चाहिये। कभी निराश, उदास एवं विषाद-ग्रस्त नहीं होना चाहिये। भगवान् सदा-सर्वत्र तुम्हारे पास हैं, यह अनुभव करते रहना चाहिये। मनमें उनका स्वरूप रहे, जीभपर नाम, हृदयमें मधुर स्मृति—सर्वदा, सब ओर उनकी संनिधिका अनुभव करना चाहिये। विषय-विराग तो फिर आप ही होगा।

•

सदा-सर्वदा प्रभुका मधुर मङ्गलमय स्मरण करते रहना। भगवान् श्रीकृष्णके मधुर स्मरणके समान अन्य कोई भी लाभ नहीं है। श्रीकृष्णके स्मरणसे उनकी मधुर रसमयी प्रेम-सेवाका परम सौभाग्य प्राप्त होता है। अनन्य ममतायुक्त, काम-लेश-गन्ध-कल्पना-हीन, निष्कपट, सुनिर्मल, समुज्ज्वल एवं प्रगाढ़ प्रीतिका नाम 'प्रेम' है। इस प्रेमकी प्राप्तिके लिये नित्य-निरन्तर श्रीकृष्णका भजन तथा इनसे प्रार्थना करनी चाहिये।

घरमें अपार धन गड़ा है, परंतु जबतक हमें उसका पता नहीं है, तबतक हम दरिद्र ही हैं। पता लगानेके साथ ही हम धनी हो जाते हैं, चाहे उस धनको गड़ा ही रहने दें; क्योंकि अब तो वह हमारा ही है।

× × ×

(१) जबतक हमारे अंदर राग-द्वेषादि, आसक्ति, कामनादि दोष हैं,

(२) जबतक अनायास ही प्रेमपूर्वक भगवान्का भजन नहीं होता,

(३) जबतक चित्तमें जरा भी क्षोभ और विषाद है और

(४) जबतक भगवान् ही हमारे एकमात्र आकर्षण, ममत्व और निजत्वकी वस्तु नहीं बन जाते, तबतक समझना चाहिये कि हमने अपने ऊपर नित्य-निरन्तर बरसनेवाली भगवत्कृपाको पहचाना नहीं। भगवत्कृपाको पहचाननेका साधन भी भगवत्कृपा ही है।

× × ×

किसी भी मनुष्यकी कृपा-अकृपासे क्या होता है ? कृपा करके वह क्या कर सकता है, जो स्वयं ही दूसरेकी कृपाका भिखारी है; और उसकी अकृपा भी किसीका क्या बिगाड़ सकती है, यदि भगवान् सहायक होते हैं। हाँ, भगवान्‌की कृपासे सब-कुछ हो सकता है—सम्भव भी असम्भव और असम्भव भी सम्भव हो जाता है।

× × ×

संयोग-वियोगमें सुख-दुःख नहीं करना चाहिये। भगवान्‌का वियोग तो कभी होता नहीं और शरीर तथा संसारके सब पदार्थ निश्चितरूपसे वियोगशील हैं, इनसे सदा संयोग रह ही नहीं सकता। पेड़पर संध्याको बहुत-से पक्षी आकर बैठते हैं, सबेरा होते ही अपने-अपने स्थानपर उड़ जाते हैं; या एक धर्मशालामें बहुत मुसाफिर ठहरते हैं, फिर सब अपने-अपने गन्तव्य स्थानपर चले जाते हैं। यही दशा इस संसारकी और घरकी है—यही समझकर सदा प्रसन्न रहना चाहिये; कभी खिन्न नहीं होना चाहिये।

× × ×

हम इस संसारके जिन लोगोंको अपना साथी समझते हैं, उनमें प्रायः अधिकांश हमारी सफलतापर ही हमारा साथ देते हैं। असफलताकी स्थितिमें बिरले ही सहानुभूति-के साथ हमारी सहायता कर पाते हैं। सच्ची बात यह है कि श्रीभगवान्‌के अतिरिक्त मनुष्योंमें ऐसी सामर्थ्य ही कहाँ

है, जो किसीका दुःख बँटा सकें। हम दुनियाके लोगों आशा-प्रत्याशा करते हैं, यही हमारी भूल है।

× × ×

यद्यपि आजका युगधर्म पैसा हो रहा है; आडम्बरहो तथा साधना-तत्पर शुद्ध परमार्थ-क्षेत्रको छोड़कर शेष ह एक क्षेत्रमें आज पैसेका सम्मान है; इसको देख-सुनक मनुष्यमात्रके मनमें पैसेवाला बननेकी स्पृहा साधारणत जाग्रत् होना कोई अचरजकी बात नहीं है; परंतु विवेक शील पुरुषका भी पैसेको मूल्यवान् समझना तथा उ महत्त्व देना खेदकी बात है। विवेकसे यह कभी समझ आ ही नहीं सकता कि पैसेसे मनुष्यके दुःख आत्यन्तिक रूपसे दूर हो सकते हैं। इसके विरुद्ध आजतकका इतिहास, संतोंकी वाणी और अपने अनुभवसे भी यही सिद्ध होत है—पैसा परमार्थमें प्रायः बाधक ही होता है।

× × ×

धनमें एक तरहकी मादकता होती है, जो मनुष्यक साधनसे गिरा देती है। उसके सामने ऐसे-ऐसे प्रपञ्च ब जाते हैं, ऐसा वातावरण बन जाता है, जिससे बरबस उ परमार्थसे हटना पड़ता है और उसे अपनी भूल उ अवस्थामें प्रायः मालूम ही नहीं पड़ती।

× × ×

सम्भव है, कोई लाखों-करोड़ों रुपये कमा ले, परं इससे उसकी असली स्थितिमें क्या उन्नति होगी? समता

ईश्वरपरायणता, वैराग्य, सत्यपर दृढ़ता, निरभिमानिता, क्षमा, यथार्थ नम्रता आदि गुण ही मनुष्यको ऊँचा बनानेवाले हैं और ये ही उच्चताके लक्षण हैं। मनुष्य सब प्रकारकी सांसारिक स्थितिसे दीन-हीन हो, रोटीके टुकड़ेका भी अभाव हो, अपमानित हो, कोई पूछनेवाला न हो, साथी-संगी-सहायक, अपना या आश्रयदाता कोई न हो, शरीर भी रोगी रहता हो—यह सब-कुछ होनेपर भी यदि वह कामना, क्रोध, लोभ, वैर, मद, ईश्वरविमुखता, आशक्ति, असत्य आदि दोषोंसे रहित और उपर्युक्त गुणोंसे युक्त है तो वह वास्तवमें परम श्रेष्ठ—उन्नत स्थितिमें है। इसके विपरीत मान, धन, पद, प्रतिष्ठा, नीरोगता आदि खूब हों, परंतु उपर्युक्त सद्गुणोंका अभाव हो तो वह किसी कामका नहीं।

× × ×

झंझटोंसे मनुष्य मुक्ति चाहता कहाँ है ? वह तो नये-नये झंझट मोल लेना चाहता है और चाहता है कि सबलोग हमारे अनुकूल हो जायँ। आजके राग-द्वेषभरे युगमें तो यह सर्वथा ही व्यर्थ आशा है। यदि इन सब अडंगोंसे दूर रहना हो तो साहस करके धन-मानकी कमीका सामना करनेके लिये तैयार होकर सब छोड़ देना चाहिये। जबतक चीलकी चोंचमें मांसका टुकड़ा है, तभीतक चील-कौए उसके पीछे-पीछे उड़कर उसे हैरान करते हैं। टुकड़ा फेंका कि फिर वह पेड़की डालपर आरामसे बैठ सकती है। कोई

उसे सतायेगा नहीं। सब उस टुकड़ेपर टूट पड़ेंगे। क्यों? टुकड़ेके पीछे दौड़ते हैं, आदमीके पीछे नहीं।

× × ×

भगवान्‌के भजन करनेकी बात भाग्यवानोंसे बनती है- इसका अर्थ यह नहीं मानना चाहिये कि जिनके पहले भाग्य हों, वे ही भजन कर सकते हैं। भजनमें प्रारब्ध हेतु नहीं है। यह अवश्य है कि जो भजन करते हैं वे ही भाग्यवान् हैं, रुपये-पैसे, धन-दौलत और पद-अधिकारवाले भाग्यवान् नहीं! और भगवद्भजनरूप इस भाग्यकी प्राप्तिका अधिकार सभीको है। भजन जो चाहे वही कर सकता है; लगन होनी चाहिये और मानव-जीवनका यही सबसे बड़ा और अत्यावश्यक कार्य है।

× × ×

मनुष्यका जीवन मिला है केवल भगवान्‌के भजन करनेके लिये ही। इसको हमलोग जो संसारके भोगोंमें बिता रहे हैं और रात-दिन केवल विषयोंका ही चिन्तन करते हैं, यह बहुत बड़ी भूल है। संसारके सुख-दुःख, हानि-लाभ, मान-अपमान तथा जीवन-मृत्यु तो सदा आते-जाते ही रहते हैं। इन दोनोंमें एक-सा भाव होना चाहिये; संसारके सुख, लाभ, मान और जीवनमें तथा दुःख, हानि, अपमान और मृत्युमें केवल श्रीभगवान्‌की ही लीला हो रही है। कभी वे दुःखके स्वाँगमें आते हैं, कभी सुखके स्वाँगमें। दोनोंमें उन्हींको देखकर सदा प्रसन्न रहे

चाहिये। अथवा यह समझना चाहिये कि यहाँ कुछ भी स्थायी नहीं है—सभी कुछ अनित्य और मरणशील है। यहाँके सब सम्बन्ध केवल आरोपित हैं, एक श्रीभगवान् ही अपने हैं; उन्हींमें अपना मन लगाना उचित है।

× × ×

अभी उस दिन प्लेन-दुर्घटनामें अच्छे-अच्छे आदमी क्षणोंमें मर गये। न मालूम, उनके क्या-क्या मनसूबे थे। यही हाल हम सबलोगोंका होनेवाला है।

× × ×

शरीरके ढाँचेका कुछ पता नहीं, कब क्या हो जाय—कहाँ गिरकर टूट जाय! प्रतिक्षण ही मृत्युके लिये मनुष्यको सर्वतोभावसे तैयार रहना चाहिये। मृत्यु वास्तवमें जीव-जीवनका अन्त नहीं है, इससे इसमें भयकी कोई बात नहीं है। और यदि ज्ञानकी प्रबल अग्निसे जीव-जीवनका सर्वथा अन्त होकर वह भूमाकी सत्तामें मिल जाय तो और भी अधिक आनन्दकी बात है। अतएव सब तरहसे सदा-सर्वदा सावधान रहना चाहिये। जीवनीभरका सारा साधन मृत्युकालीन शुभ-वासनाके लिये ही है; क्योंकि मनुष्यका भविष्य प्रधानतः इसीपर अवलम्बित है। मृत्युकालीन ब्राह्मी-स्थिति ब्रह्मनिर्वाणको प्राप्त करानेवाली होती है। इससे मृत्युको सदा ही सामने समझकर सदा-सर्वदा ब्राह्मी-स्थितिमें—भगवान्‌की ही स्मृतिमें स्थित

रहनेका प्रयत्न करना चाहिये। क्षणभङ्गुर शरीर ए
दिन अवश्य जायगा; दो दिन आगे या पीछे। परंतु क्ष
भङ्गुर होनेपर भी मुक्तिका सारा दारमदार इसीपर है।

× × ×

कामना न दूर होती हो तो मेरी तुच्छ समझमें सक
भावकी पूर्ति भी भगवान्‌से करानी उत्तम है। माना
इसमें भक्तिकी कमी है, भगवान्‌के तत्त्व और महत्त्व
पूरा ज्ञान नहीं है, परंतु भगवान्‌को छोड़कर दूसरे उपाय
की शरण लेना तो व्यभिचार है।

जग जाचिअ कोउ न, जाचिअ जौं, जिय जाचिअ जानकीजानहि रे
जेहि जाचत जाचकता जरि जाइ, जो जारति जोर जहानहि रे

—यह पद केवल गानेका नहीं है। यह तो सिद्धा
है—माननेका और उसे क्रियारूपमें लानेका।

× × ×

जो सकाम हैं, वे भी यदि भगवान्‌पर निर्भर करें
उनका भी परिणाममें परम कल्याण हो सकता है।
सफलता मानव-शक्तिके लाख प्रयत्नोंसे भी असम्भव
वही भगवान्‌के एक संकल्पमात्रसे हुई तैयार रहती है
द्रौपदीका चीर बढ़नेकी बात क्या उपन्यासकी कहानी है
हम पढ़ते-सुनते हैं, कहते हैं, परंतु फिर भी काम पड़ने
विश्वास नहीं कर सकते, यह तो हमारी एक प्रकार
नास्तिकता है!

[३]

भगवत्कृपा सब समय अनुकूल स्वरूपमें ही नहीं आती, कभी-कभी बड़े भारी प्रतिकूल, अत्यन्त भयावह रूपका नकाब डाले आती है; परंतु वस्तुतः वह होती है—बहुत ही अनूठी, सदाके लिये निहाल कर देनेवाली। यह स्वाभाविक बात है, अटल नियम है। इसमें कभी परिवर्तन नहीं होता। भगवान् कभी असुन्दर और अमङ्गल करते ही नहीं; फिर जो उनपर निर्भर करके उनका भजन करते हैं, उनके लिये तो असुन्दर और अमङ्गल शब्द कोषमेंसे ही निकल जाते हैं।

× × ×

'प्रभु जो करते हैं, अच्छा ही करते हैं।'—यह समझकर बहुत प्रसन्न-मन और प्रसन्न-वदन रहना चाहिये। परमानन्द-रूप परमात्माके अटल राज्यमें उदासी कैसी? विषाद और चिन्ताका तो मूलोच्छेद ही कर डालना चाहिये। आनन्दके अथाह सागरमें दूसरेको स्थान ही कहाँ है? मस्त रहना चाहिये, झूमते रहना चाहिये। निरन्तर खिलखिलाकर हँसना चाहिये मौजकी मस्तीमें। स्वयं आनन्दमें मग्न रह-कर दूसरोंको भी उस आनन्दमें लगाइये।

× × ×

यदि साधारण तौरपर सुखपूर्वक घरका खर्च चलाने लायक संग्रह हो और जितना खर्च लगता है, उतनी आम-दनीका जरिया हो तो ज्यादा काम बिल्कुल नहीं बढ़ाकर अपना समय, यदि बचे तो लोक-सेवा, भगवत्सेवा आदिमें लगाना चाहिये। मैं न तो तामसिक आलस्य-प्रमादका पक्ष-पाती हूँ और न भजनके बहाने 'काय-क्लेशभयात्' झंझटोंके डरसे किये जानेवाले राजसिक त्यागका ही समर्थन करता हूँ। जीवनको कर्ममय बनाये रखना ही प्रमादसे बचनेका साधन है; परंतु कर्म अवश्य ही ऐसे होने चाहिये, जो शुभ हों, जो परमात्माकी ओर ले जानेवाले हों—परमात्माको भुला देनेवाले न हों, परमात्माके मार्गसे भ्रष्ट कर देनेवाले न हों।

× × ×

भगवान्‌का आश्रय समस्त शक्तियोंका आधार है। भगवान्‌के आश्रयीको पाप-ताप संताप नहीं दे सकते, उसके सारे दोष भगवान्‌का आश्रय ग्रहण करते ही नष्ट हो जाते हैं। रामके बलके समान और कोई बल नहीं है। आप रामके बलका आश्रय लेकर निर्भय होनेकी चेष्टा कीजिये।

× × ×

सर्वत्र भगवद्दर्शन और निरन्तर भगवच्चिन्तनपर विशेष खयाल रखिये। जीवनको भगवान्‌के लिये भगवदाज्ञानुसार प्रवृत्तिमय बनाइये। जीवनका प्रत्येक क्षण भगवान्‌के का

आवे। जीवनके प्रत्येक श्वासपर उन्हींका एकान्त अधिकार हो। हमारा जीना-मरना, उठना-बैठना—सब उन्हींके लिये हो—ऐसी चेष्टा कीजिये।

× × ×

जीवनमें परिवर्तन और क्षय प्रतिक्षण हो रहे हैं। जगत्के क्षणध्वंसी विषयोंसे नित्य-सुख कभी नहीं मिल सकता। जो कुछ मिलता है, वह भ्रममूलक एवं क्षणिक है और दुःखकी भूमिकामात्र है। श्रीभगवान्पर विश्वास करके उनपर सर्वप्रकारसे निर्भर हो जाना चाहिये। भगवत्कृपासे जो कुछ होता है, परम मङ्गल होता है। क्षण-भङ्गुर शरीरका क्या पता, कब नाश हो जाय। भगवान्की इच्छासे जो कुछ भी हो, उसीमें संतुष्ट होना मनुष्यका धर्म है। भगवान्का स्मरण कीजिये और नाट्यशालाके खेलों-को खेल समझकर देखिये। हम सभी कालके मुखमें हैं। पता नहीं, कल किसका क्या होगा ?

× × ×

असलमें काम तो रामसे है। वह राम सब जगह रम रहा है, सर्वत्र हाजिर-नाजिर है। उसमें मन लगाना, उसको सर्वत्र देखना, उसीका स्मरण करना और उसीके शरण होना चाहिये। भगवान्की शरणागति मनुष्यको भव-समुद्रसे तारनेवाली आत्यन्तिक मुक्ति प्रदान करने-वाली है।

× × ×

परमात्मा तो सर्वत्र समानभावसे व्याप्त है और उसं दयाका समुद्र भी सर्वत्र सर्वदा लहरा रहा है। कहीं रहें, हम उससे अलग नहीं हो सकते—यह निश्चय रखिये

× × ×

भगवान् सदा हम सबके अत्यन्त समीप हैं; उनसे अधि समीप अन्य कोई भी नहीं है। उनका चिन्तन कीजिये उन्हें सदा अपने समीप समझिये। अपनेको सदा उनं परम पवित्र गोदमें सर्वथा सुरक्षित देखिये।

× × ×

जहाँतक बने सबसे प्रेम रखनेका प्रयत्न करना चाहि तथा अपनेद्वारा किसीका भी अनिष्ट-चिन्तन नहीं कर चाहिये, फिर भगवान् अपने लिये परिणाममें कल्याण करेंगे—इसमें जरा भी संदेह नहीं।

× × ×

भलाई किसी दूसरेकी ओर देखकर नहीं की जाती अपनी भलाई ही भलाई करनेकी प्रेरणा करती है। हं तो हमेशा सबकी भलाई ही सोचनी चाहिये। बुरा करं वालेकी भलाई करना ही तो भले मानवकी भलाई यथार्थ स्वरूप है।

× × ×

अपनेको तो अपना ही दोष ढूंढ़ना चाहिये। इसी

अपना लाभ है। यदि हम भगवान्के सामने सच्चे

निर्दोष हैं तो सारा जगत् चाहे हमें बुरा समझे, हमारी कोई हानि नहीं है; और यदि जगत् हमारी बड़ी तारीफ करता है, पैर भी पूजता है, पर हम भीतरसे बुरे हैं—तो उस बाहरी मान-बड़ाईका कोई मूल्य नहीं है। जगत्के लोग तो दूसरोंकी उन्नति देखकर डाह भी करने लगते हैं; परंतु अपनी ओरसे यथासाध्य ऐसा ही प्रयत्न होना चाहिये कि जिसमें हमारा बर्ताव किसीके लिये भी अहितकर न हो।

× × ×

श्रीभगवान्‌की हम सभीपर अनन्त कृपा है। उनकी कृपापर विश्वास करके नित्य प्रसन्न रहना चाहिये। भगवान्‌की इतनी कृपा होते हुए भी अपनी दुर्दशाकी कल्पना करना एक प्रकारसे भूल ही है। सर्वसुहृद् भगवान्‌की कृपा निरन्तर अनन्त धाराओंमें हमलोगोंपर बरस रही है। उसका पद-पदपर, पल-पलमें अनुभव करके आनन्दमग्न रहना चाहिये।

× × ×

अन्तर्व्यथा कोई ऐसी स्थिति नहीं है, जो मिट नहीं सकती। उसके दो उपाय हैं—या तो आत्मशक्तिपर विश्वास करके बदलेमें ऐसा निश्चय कीजिये कि 'मेरे अंदर व्यथा है ही नहीं। मैं सर्वथा, सर्वदा निश्चिन्त, प्रफुल्ल, आनन्दमय और परम प्रसन्न हूँ।' अथवा भगवान्‌की नित्य सहज मङ्गलकारिणी कृपा-शक्तिपर विश्वास करके ऐसा निश्चय कर लीजिये कि 'उनकी कृपासे मेरी व्यथा सदाके लिये विलीन, विनष्ट हो गयी है।'

इस प्रकारका आपका निश्चय जितना ही दृढ़ हो जायगा, उतनी ही आपकी अन्तर्व्यथा नष्ट होती जायगी और पूरा निश्चय होते ही वह मर जायगी।

× × ×

समस्त इच्छाओंका समर्पण आनन्दपूर्वक श्रीभगवान्‌के चरणोंमें ही करना चाहिये। किसी अन्यको न तो पूर्ण समर्पण किया ही जा सकता है और न उसमें वैसा लाभ ही है। समर्पणका भाव मनुष्यमें आता है, परंतु वह उसे सोच-समझकर भी कर नहीं पाता। जहाँतक अनुकूलता होती है, वहाँतक तो समर्पण-सा प्रतीत होता है; परंतु प्रतिकूलता आते ही चित्तमें क्षोभ हो उठता है। इसलिये बस, इस युगमें एकमात्र भगवान्‌का नाम-जप ही सबके लिये सरल अवलम्ब है।

श्रीभगवान्‌का नाम लेते रहिये और उनकी अहैतुकी कृपापर विश्वास कीजिये—ये दोनों परम साधन हैं। थोड़े में ही सारी बात बतला दी है। यही आपके लिये भी सब मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला अनुष्ठान है।

× × ×

श्रीभगवान्‌पर विश्वास बढ़ाना चाहिये। भगवान्‌पर विश्वास दृढ़ हो जानेके बाद चित्तसे अस्थिरता तथा व्याकुलता सदाके लिये मिट जायगी। जितना-जितना विश्वास बढ़ेगा, उतना-उतना ही भगवान्‌में निवास होगा। भगवान्‌की गोद प्राप्त होगी। भगवान्‌की गोद प्राप्त कर लेना परम प्राप्ति है। अतएव—

बिस्वास करि सब आस परिहरि दास तव जे होइ रहे।
जपि नाम तव बिनु श्रम तरहिं भव नाथ सो समरामहे॥

—इन वचनोंपर विश्वास करके श्रीभगवान्‌पर विश्वास बढ़ाना चाहिये।

× × ×

भगवान्‌पर विश्वास रखकर उनका नित्य स्मरण करनेका प्रयत्न करना चाहिये। विश्वासमें कमी नहीं आनी चाहिये। यह विश्वास रखना और बढ़ाना चाहिये कि भगवान्‌की स्मृति भगवत्कृपासे होती है। यह मानो भगवान्‌का निमन्त्रण है। जब उन्होंने निमन्त्रित कर लिया है और स्मरणरूपी पत्तल भी दे दी है तो परोसेंगे भी जरूर। एक भला आदमी भी निमन्त्रित व्यक्तिको पत्तल दे देनेपर परोसता ही है, फिर भगवान् हमें कैसे भूखे रख सकते हैं! हाँ, हम पत्तल फेंककर कहीं जरा-सी देरमें ही घबराकर वापस न लौट जायँ। लौटने भी वे सहज नहीं देंगे, परंतु अपने भी सावधान तो रहना ही चाहिये।

× × ×

घर त्यागकर निकल जाने अथवा अन्न-जलका त्याग करनेसे भगवान्‌के दर्शन हो जायँ, ऐसा कोई नियम नहीं है। श्रीभगवान्‌की कृपासे घरमें रहते और अन्न-जल ग्रहण करते हुए भी भगवान्‌के दर्शन हो सकते हैं और घर छोड़-कर अन्न-जल त्यागनेपर भी शायद नहीं होते। भगवद्दर्शनमें प्रधान कारण भगवद्दर्शनकी अनन्य और अति उत्कट इच्छा है। उस अनन्य इच्छामें तन-मनकी सुधि न रहनेसे अन्न-जलका त्याग अपने-आप हो जाय तो बहुत अच्छा है।

परंतु जान-बूझकर हठपूर्वक अन्न-जल-त्यागकी क्रिय या किसीके मर जानेके भयसे भगवान्को दर्शन देने प ऐसी कोई बात समझमें नहीं आती। असलमें तो भगवा के दर्शन किसको, कब और किस साधनसे या नियम होते हैं, इस बातको एकमात्र भगवान् ही जानते हैं। भ वद्दर्शनके अनेक साधन और विभिन्न हेतु हैं, परंतु इत कहा जा सकता है कि अनन्य तथा तीव्रतम लालसा बिना भगवद्दर्शन दुर्लभ है। जब भगवान्से बिना मि हमसे नहीं रहा जायगा, तब भगवान् भी हमसे बिना मि नहीं रह सकेंगे। उनका प्रण ही है—'जो उनको जि प्रकारसे भजता है, वे भी उसको वैसे ही भजते हैं।' य हमारा मन उनके बिना छटपटायेगा तो वे भी हम मिलनेको आतुर होंगे ही।

× × ×

यों तो इस शरीरके लिये सभीको निराशा हो चाहिये। आशा तो दुराशा मात्र है। शरीर अवश्य एक दिन छूटेगा—दो दिन आगे या पीछे। अतए जबतक शरीर स्वस्थ है और इन्द्रियाँ शक्तिमान हैं, तभ तक भगवान्का भजन भलीभाँति करनेकी चेष्टा कर चाहिये। उनकी कृपा तो सूर्यके प्रकाशकी भाँ सभीपर समान है। ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है, भगवा जिसके सुहृद न हों। वे किसी स्वार्थी, पक्षपाती, एकदेशीय अल्पशक्ति राजाके समान नहीं हैं, जो किसीपर दया

और किसीपर नहीं। तथापि उनकी इस दयाका अनुभव भी उनकी दयासे ही होता है। आप उनकी उस दयापर विश्वास कीजिये और निर्भर होइये। दयापर निर्भर होना ही दयाके अनुभव करनेका एक मुख्य साधन है। यह विश्वास कीजिये, दृढ़ विश्वास कीजिये कि 'मुझपर भगवान्‌की अपार, अखण्ड, अनन्त दया है। उस दयामयका दिव्य हाथ निरन्तर मेरे सिरपर रहता है। मैं सर्वथा और सर्वदा उनके द्वारा सुरक्षित हूँ। मेरे समीप रोग, शोक, दुःख, विषाद, चिन्ता, उद्वेग, भय और ताप-पाप आ ही नहीं सकते।' ज्यों-ज्यों आपका विश्वास दृढ़ होगा, त्यों-त्यों आप उसका प्रकाश पायेंगे और अपनेको एक ऐसी स्थितिमें पायेंगे, जिसकी आपके मनमें अभी कल्पना भी नहीं है।

× × ×

भगवान्‌की अपरिमित दयापर विश्वास करके उनका स्मरण करते हुए निश्चिन्त रहना चाहिये। श्रीभगवान् मङ्गलमय हैं, उनका प्रत्येक विधान परम कल्याणसे पूर्ण होता है—ऐसा अनुभव करना चाहिये। श्रीभगवान्‌की कृपाको देख-देखकर निरन्तर प्रसन्न रहना चाहिये। चित्तमें विषाद-दुश्चिन्ताको नहीं आने देना चाहिये। नाना प्रकारकी स्फुरणाओंको भी दबाकर श्रीभगवान्‌की कृपाका चिन्तन करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

[४]

संसारमें कोई भी प्राणी सर्वथा दोषयुक्त तमोगुणी नहीं है; तमोगुणके साथ प्रकृतिके नियमानुसार उसमें स गुण भी है ही—उसकी मात्रा कम-ज्यादा हो सकती है हमें चाहिये कि हम अपने सम्पर्कमें आनेवाले प्राणीको भाव-विचार-व्यवहार दें, जिससे उसका तमोगुण घट उसमें सत्त्वगुण बढ़े। यही वास्तविक सेवा है। अत हमारे सम्पर्कमें जो हैं, उनमें भी जो सद्‌गुण हैं—चाहे थोड़े हों, उनका हमें आदर करना चाहिये तथा स्नेह हृदयके रसके द्वारा–हृदयके अमृतके द्वारा उनके दोष- का नाश करना चाहिये; तिरस्कार, असहयोग, बहि आदिके द्वारा नहीं। क्रोध, हिंसा, द्रोह आदिसे बढ़ते हैं, घटते नहीं; अपने भी तथा जिसके प्रति होते उसके भी। इनके बदले प्रेम, अहिंसा, आत्मीयतायुक्त तथा सेवा आदिके द्वारा दोष नष्ट होते हैं, सद्‌गुण हैं—यही मेरा भाव है।

× × ×

मैं यों तो सारे जगत्‌से ही सदा निराश हूँ—'नैरा परमं सुखम्'—पर व्यवहारमें मैं यह कभी नहीं मानता जो आज पतित है, वह सदा पतित ही रहेगा, कभी सुध ही नहीं। यदि यह बात हो तो पतितोंके उद्धारकी

आशा ही नहीं रह जाती। पर ऐसी बात नहीं है। महान्-से-महान् पतितमें भी वही निर्दोष आत्मा है, जो एक बहुत बड़े पवित्र-जीवन महापुरुषमें है। दोष आत्मामें नहीं आता, प्रकृतिके मन, बुद्धि, शरीरमें आता है और वह निकल भी सकता है। आत्माकी सहज विशुद्धि सदा बनी रहती है। प्रयत्नसे, साधनसे मनके दोष नष्ट हो जाते हैं। इसीके लिये साधन है, इसीके लिये शास्त्र हैं—'सठ सुधरहिं सतसंगति पाई'। अतएव किसीको भी पतित मानकर उससे कभी निराश नहीं होना चाहिये; उसे उठानेका, उसे पावन बनानेका प्रयत्न शुद्ध नीयतसे सदा करते रहना चाहिये।

× × • ×

मनुष्य-जीवन बहुत ही दुर्लभ और क्षणभङ्गुर है। संसारकी मोह-मायामें न फँसकर श्रीभगवान्‌में चित्त लगाना चाहिये। सत्सङ्ग, भजन और ध्यानके द्वारा चित्तके सब दोषोंका नाश कर श्रीभगवान्‌में चित्त संलग्न कर रखना चाहिये। संसारके भोग देखनेमें मोहवश अच्छे मालूम होते हैं, परन्तु याद रखना चाहिये कि ये जहरके मीठे लड्डू हैं; इनका अन्तर्विष बड़ा ही भयानक होता है। अतएव विचार तथा संतोंकी अनुभवयुक्त वाणीके द्वारा इनका असली स्वरूप समझकर इनसे चित्त हटाना चाहिये। भगवान् कहते हैं—'ये शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि जितने विषय हैं—सब दुःखयोनि हैं, आदि-अन्तवाले हैं। कोई भी

बुद्धिमान् मनुष्य इनमें नहीं रमता ।' बुद्धिमान् तो वह जो भगवान्में रमता है और भगवान्में ही संतुष्ट है ।

हम मनुष्य बुद्धिमान् कहलाते हैं और मूर्खको भ जान-बूझकर विषयरूपी आगमें पतंगकी तरह पड़ते हैं, हमारी विशेष मूर्खता है । शीघ्र चेत करना चाहिये । जी बहुत ही थोड़ा है । जो कुछ करना है, शीघ्र ही कर ले चाहिये । श्रीपरमात्मापर श्रद्धा-विश्वास करनेसे, विश्वा पूर्वक उनपर निर्भर होनेसे सब कुछ स्वयमेव हो जाता और मानव-जीवन सफल हो सकता है ।

× × ×

श्रीभगवान्को सर्वत्र समझकर निष्काम प्रेमभा उनके चिन्तनकी चेष्टा करें । भगवान्को परम सुहृद् स झनेसे और अपनेको वस्तुतः उनके आश्रित माननेसे सब बाधाएँ अपने-आप दूर हो जाती हैं और अपने-आप वान्की कृपाके दर्शन होने लगते हैं ।

× × ×

नेतागिरीके सम्बन्धमें मेरा ऐसा विचार है कि बहुत मीठा विष है । ऊपरसे आपका मन उसे छो चाहता है, पर अंदरसे बार-बार उसकी तरफ आक भी होता है । यह कहना अत्युक्ति नहीं होगा कि आजक जमानेमें साधारण मनुष्यकी अपेक्षा नेता कहलाने व्यक्तियोंमें अधिकांशका जीवन अधिक प्रपञ्ची औ

मलिन, अधिक राग-द्वेषग्रस्त, अधिक कामोपभोगपरायण, अधिक चिन्ताग्रस्त और पापमय है। भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये कि इससे छुटकारा करावें।

× × ×

जो कुछ हो रहा है, वह सब भगवान्‌के संकेतसे उन्हींके विधानके अनुसार हो रहा है। बहुत-सी ऐसी बातें हैं, जो आवश्यक मालूम होती हैं और की जाती हैं तथा जबतक भगवान्‌में विश्वास पूरा नहीं है, तबतक अन्याय रोकने और अपना पक्ष ऊँचा रखनेके लिये सभीको—लोकसंग्रहार्थ कर्मयोगीको, सम्भावित पुरुषोंको अवश्य करनी ही चाहिये। परंतु जो लोग भगवान्‌में विश्वास जमाना चाहते हैं, उनका कर्तव्य कुछ दूसरा ही होता है। वे श्रीभगवान्‌का चिन्तन करें, श्रीभगवान्‌में विश्वास करके उन्हें प्रसन्न करने, उनके प्रिय बननेके लिये उनका भजन-स्मरण करते रहें; योग-क्षेमकी चिन्ता न करें। बच्चेको कब क्या चाहिये, उसका किस बातमें हित है, यह सब माँ सोचे, माँ ही व्यवस्था करे। बच्चा तो यह भी नहीं सोचे कि माँ मेरा हित सोचेगी और व्यवस्था करेगी। वह तो बस, माताके परायण हो रहे। परंतु 'परायणता' सच्ची हो; नहीं तो तामसिक आलस्य-प्रमाद आ जायेंगे।

× × ×

संसारमें कलह और द्वेषका नाश तथा बदलेमें प्रेम

तथा सेवा-भावकी वृद्धि हो—हमलोगोंको अपने प्रत्येक कर्मसे, प्रत्येक भावसे यही करना चाहिये। ऐसा करते यदि कहीं लाञ्छना भी भोगनी पड़े तो उसे सहर्ष स्वीकार करना चाहिये। हर जगह कलहकी आगमें पानी डालना चाहिये, घी नहीं। यह बहुत बड़ी ईश्वरकी सेवा है।

× × ×

सबको अपने-अपने भाग्यके अनुसार मिलता है। अपनेको उचित प्रयत्न करना चाहिये, फिर जो कुछ भगवान्के मङ्गलमय विधानसे हो जाय, उसीमें मङ्गल है। इतनी बेचैनी नहीं होनी चाहिये। इस बेचैनीका कारण है—भगवान्के मङ्गल-विधानमें पूरा विश्वास न होना। इस विश्वासको बढ़ाइये। हमलोगोंपर भगवान्की बड़ी कृपा है; उस कृपाको चारों ओर देखिये और चित्तको प्रफुल्लित रखिये।

× × ×

चिन्ता-विषाद भगवान्के मङ्गल-विधानमें अविश्वास होनेपर ही होते हैं। उनकी कृपा और मङ्गल-विधानमें विश्वास कीजिये; फिर चिन्ता-विषाद रहेंगे ही नहीं।

मनमें चिन्ता-विषाद न करके उत्साह तथा उल्लास रखना चाहिये। चिन्ता-विषादसे निराशा-निरुत्साह होते हैं, काममें शिथिलता आती है एवं कोई भी लाभ नहीं होता। भगवत्कृपाके भरोसे हमेशा आनन्द, आशाकी

भावना करनी चाहिये और ऐसी ही भावनाओंको दुहराते रहना चाहिये।

प्रतिकूलतामें भी भगवान्‌का मङ्गलविधान मानकर मन प्रसन्न रहे, ऐसा प्रयत्न करना चाहिये; क्योंकि भगवान्‌का विधान मङ्गलमय ही होता है। यह सर्वथा सत्य है।

× × ×

प्रतिकूल परिस्थितिको अनुकूल बना लेना ही तो साधन है। जगत्‌में कोई परिस्थिति प्रतिकूल नहीं है, यदि नित्य अनुकूल भगवान्‌का सर्वदा साथ बना रहे। जो सब जगह, सब समय, सभी रूपोंमें भगवान्‌को देखता है, उसके लिये प्रतिकूलता कहाँ है? फिर अपने घरकी प्रतिकूलताको अनुकूल समझना तो आपके मनकी वृत्तियोंको जरा-सा आसक्ति और ममताहीन बनानेसे हो सकता है। शान्त, सहनशील, वाक्-संयमी, क्षमाशील, निजदोष-दर्शक बने रहनेकी चेष्टा रखिये; इस रोगकी आप ही दवा हो जायगी।

× × ×

भगवान्‌में सच्ची निष्ठा होनेपर भगवद्ध्यानकी तो बात ही क्या, भगवत्कृपासे साक्षात् भगवद्दर्शन हो सकते हैं और एकमात्र भगवच्चिन्तनकी ही चिन्ता शेष रह सकती है। हाँ, सच्चे हृदयसे, विश्वासपूर्वक लगन होनी चाहिये, दम्भ न हो। दम्भसे बचनेके लिये सबको बड़ी ही साव-

धानी रखनेकी आवश्यकता है। मैं यह निश्चयपूर्वक क
सकता हूँ कि काम-क्रोधकी अपेक्षा भी दम्भ अधिक बु
हैं; और भगवान् कामी-क्रोधीको शीघ्र अपना सकते
परंतु दम्भीको नहीं। दम्भी अपनेको ही धोखा देता
आप ही अपनी अधोगतिका मार्ग साफ करता है। सर
हृदयका क्रोधी-कामी शीघ्र भगवान्का प्रेम प्राप्त क
सकता है; परंतु चतुरचूड़ामणि दाम्भिक लटकता ही र
जाता है। अतएव सरल हृदयका विश्वास होना चाहिये
ध्रुव, शबरी, मीराँ, धन्ना आदि भक्तोंमें सरल विश्वा
ही प्रधान था। सरलता ऋषित्वकी निशानी है और दम्भ
नरकका दूत है, जो जीवको पकड़कर काम-क्रोध-लोभ
त्रिविध नरकद्वारोंमें ढकेल देता है।

× × ×

सद्ग्रन्थोंका स्वाध्याय करना तो सदा लाभकारी है
हैं; अवश्य करना चाहिये। परंतु इतनी सावधानी रहनी
चाहिये कि वह स्वाध्याय केवल बुद्धिका विलास न होक
परमार्थ-पथका प्रदर्शक हो। केवल शास्त्र-पठन उत
महत्त्वका नहीं, जितना साधनसे युक्त शास्त्र-पठन है
शास्त्रका स्वाध्याय भी वस्तुतः एक साधन ही है और इ
भावसे स्वाध्याय भी करना चाहिये। भगवद्-भजन य
निरन्तर ब्रह्मवृत्तिका रहना स्वाध्यायका एक फल है औ
स्वाध्यायकी अपेक्षा महत्तम साधन है। भगवत्प्राप्ति

ब्रह्मसाक्षात्कार केवल शास्त्रके स्वाध्यायसे नहीं होता, भजनसे होता है। इसीसे भजनका महत्त्व अधिक है। ब्रह्मनिष्ठके साथ-साथ वेदका ज्ञान भी हो तो सोना-सुगन्ध दोनों हैं। ऐसा पुरुष और लोगोंको भी मायाके पार पहुँचानेमें समर्थ होता है। इसीसे 'श्रोत्रिय' और 'ब्रह्मनिष्ठ' पुरुषकी महिमा है।

× × ×

भयंकर परिस्थितिसे बचनेका व्यावहारिक उपाय भगवत्कृपापर विश्वास बढ़ाना है। बार-बार भगवत्कृपाका स्मरण करके दृढ़तासे यह निश्चय करना चाहिये कि 'मुझपर भगवत्कृपा असीम है। मैं मानो सब ओरसे भगवत्कृपासे घिरा हूँ। मुझपर अनवरत भगवत्कृपाकी सुधामयी वर्षा हो रही है। वह इतनी है, जितनोकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकता'—इस प्रकार बारंबार विश्वास करते रहनेसे कुछ ही समयमें भगवत्कृपाके प्रत्यक्ष दर्शन होने लगेंगे; क्योंकि यह वस्तुतः सत्य तत्त्व है। जिनको भगवत्प्रेम-प्राप्तिका विश्वास है, वे धन्य हैं। वे सदा पुण्यमय हैं।

× × ×

भगवान्‌की कृपा इतनी अपार है कि उसकी कोई सीमा ही नहीं है। मनुष्यको भगवत्कृपाके ऊपर पूर्ण भरोसा रखना चाहिये। यह दृढ विश्वास रखना चाहिये कि 'मैं

भगवान्‌का पूर्ण कृपापात्र हूँ। भगवान् मेरे परम आश्र हैं। उन्होंने मुझे अपना लिया है। वे मेरे लिये सदा हितका विधान करते हैं। मेरा भविष्य तथा वर्तमा उनकी कृपासे अवश्य ही सुधर रहा है तथा सुधरेगा। उनका हो चुका हूँ, वे मेरे हो चुके'—इस प्रकारकी भाव नाएँ विश्वासके रूपमें परिणत होनी चाहिये, फिर आ चलकर ये प्रत्यक्ष हो जाती हैं।

× × ×

भाई ! संसारकी गति बड़ी विचित्र है। दूसरों सावधान करनेवाले स्वयं ही नदीकी धारामें बह जा हैं। यही माया-मरीचिका है। 'यहाँ तृप्ति और शान्ति नहीं है,'—ऐसा जानने और बखाननेवालेको भी मा मोह लेती है। यही तो मायाकी प्रबलता है। मनुष्य इतन प्रपञ्च क्यों रचता है, इसका उसके पास कोई उत्तर नहीं है। प्रच्छन्नरूपसे हृदयमें छिपी हुई भोग-सुखकी चाह करवाती है, यह सत्य है; परंतु उसका वह सुख कहाँ इस बातको न जानकर ही प्रपञ्चकी रचना होती है—य आश्चर्य है।

× × ×

मेरा तो ऐसा विश्वास है कि भगवान् श्रीराम या श्रीकृष्ण स्वयं ही कृपा करके दर्शन देते हैं। उनके दर्शन प्राचीन कालमें बहुत भक्तोंको हुए हैं, अब भी होते हैं और हो सकते हैं। गीता और रामायणका मनन तथा संतोंका सङ्ग कीजिये। यदि आपकी लगन सही होगी तो आपको शान्ति मिलेगी और भगवान्‌के दर्शन भी भगवत्कृपा-से मिलेंगे। भगवान् श्रीराम और भगवान् श्रीकृष्णके प्रेम में न तो किसी प्रकारकी शङ्का करनी चाहिये और न किसी अन्य धर्मकी ओर ताकना ही चाहिये। किसीका विरोध भी नहीं करना चाहिये। यही मानना चाहिये कि 'हमारे ही इष्ट सर्वेश्वर प्रभु श्रीराम या श्रीकृष्ण ही विभिन्न लोगोंके द्वारा विभिन्न नाम-रूपोंसे पूजित होते हैं। वे ही एकमात्र सर्वेश्वर हैं, वे ही ईसाके पिता हैं, वे ही अल्लाह हैं, वे ही ब्रह्म हैं, वे ही शिव हैं और वे ही शक्ति हैं। विश्वास और भक्ति होनी चाहिये और होनी चाहिये दर्शनकी तीव्र उत्कण्ठा, फिर भगवान् अवश्य मिलते हैं। भगवान्‌के भक्तका मन सर्वथा निश्शंक, निश्चयी, विश्वासी और प्रभुके प्रेमसे सराबोर होना चाहिये। मेरी रायमें आपको भक्ति बढ़ानी चाहिये। इष्ट और आस्था-परिवर्तनकी कोई आवश्यकता नहीं।

[५]

भगवदनुराग होनेसे विषय-विराग हो ही जाता है। अमृतका स्वाद मिलनेपर विषकी घूँट भला कौन पीयेगा? परंतु सच्चे भगवदनुरागकी उत्पत्तिके लिये विषय-विराग की जरूरत कुछ पहले भी होती है। इसीसे 'अभ्यास-वैराग्य' दोनोंका साधन साथ-साथ करनेकी भगवान्‌ने आज्ञा दी है। भगवान्‌में चित्त लगानेका अभ्यास करना चाहिये और विषयोंसे अनासक्त होते रहना चाहिये। ज्यों-ज्यों विषयोंसे चित्त हटेगा, त्यों-त्यों वह भगवान्‌में लगेगा और ज्यों-ज्यों भगवत्प्राप्तिका आस्वाद मिलेगा, त्यों-त्यों विषयोंसे यथार्थ वैराग्य होता चला जायगा। इस प्रकार उच्चात्युच्च भगवत्प्रीतिको पानेके लिये भगवान्‌का आश्रय ही परम साधन है। ज्यों-ज्यों अहंकारका आश्रय छूटे त्यों-त्यों भगवान्‌का आश्रय दृढ़ होगा और चित्तमें भग- वान्‌के प्रति निर्भरताकी भावना उत्पन्न होगी। यह भगवत्-निर्भरता आगे चलकर हमें सम्पूर्णरूपसे परमात्मा (श्रीनारायण)–के चरणोंमें समर्पित कर देगी। हमारे शरीर, मन, बुद्धि– या यों कहना चाहिये कि अपने कहलानेवाले सभी पदार्थोंपर भगवान्‌का एकाधिकार

जायगा; हमारे सब-कुछके स्वामी श्रीभगवान् हो जायँगे। उस समय हम पूर्ण परतन्त्र हो जायँगे—वैसे ही जैसे काठकी पुतली नचानेवालेके हाथ हो जाती है; वह जैसे हिलाता है, वैसे ही हिलती है। अपनी कुछ भी इच्छा करना तो दूर रहा, उसे जिस मनमें इच्छा उत्पन्न होती है, उस मनके अस्तित्वका भी कभी भान नहीं होता। यहाँतक कि अस्तित्वका अनुभव करनेवाला अहंकार भी उसमें नहीं रहता। काठकी पुतली निर्जीव है, भक्त चेतन है। परंतु उसकी सारी चेतना उस महाचेतनके चरणोंमें समर्पित होकर उसीकी बन जाती है। यह परम परतन्त्रता ही, यह अपनेको सर्वतोभावसे सदाके लिये श्रीभगवान्‌की लीला-सामग्री बना देना ही, परम लाभ है। यह भक्तका बड़ा ऊंचा स्वरूप है। यही यथार्थ प्रपत्ति या शरणागति है; यही वास्तविक आत्मनिवेदन है। इसमें वह भक्त अपना लोक-परलोक और भुक्ति-मुक्तिका सारा भार श्रीभगवान्‌के चरणोंपर डालकर निश्चिन्त हो जाता है। उसे इस बातकी भी स्मृति नहीं रहती कि उसका कोई भार भगवान्‌के चरणोंपर पड़ा है। वह लोक-परलोक और भोग-मोक्षको भूलकर सब प्रकारके स्वार्थको स्वाहा कर भगवान्‌की लीलाका उपकरण-मात्र बना रहता है।

× × ×

महात्माओंमें सदा आदर-बुद्धि रखनी चाहिये। महात्माओंका मन मक्खनसे भी अधिक कोमल होता है।

मक्खन तो खुद ताप पाकर पिघलता है, परंतु महात्मा अ
तो अपने तापको तो ताप ही नहीं मानते; वे दूसरेके ता
पिघल जाते हैं। इस प्रकारके परदुःखकातर हृदयके का
ही वे तीर्थोंको तीर्थत्व प्रदान करनेके लिये जहाँ-तहाँ
हैं। जीवोंका कल्याण करना ही उनका स्वभाव है।
महात्माओंमें सदा समान बुद्धि रखनी चाहिये और उन
चरण-धूलिसे अपने मस्तकको अभिषिक्तकर अपने
पावन बनाना चाहिये। किसी भी महात्मामें दोष-बुद्धि,
बुद्धि या अनादर-बुद्धि नहीं करनी चाहिये। याद र
चाहिये—श्रीभगवान्‌का किसीने ठेका नहीं ले रखा
सभी अपने-अपने भावके अनुसार भगवान्‌को भजते हैं
भगवान् भी 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्
इस घोषणाके अनुसार विभिन्न प्रकारसे उनकी अनुभू
आते हैं।

× × ×

अनन्य भगवत्-शरणागति अथवा यथार्थ परमा
ज्ञानके बिना कर्मके अवश्यम्भावी परिणामस्वरूप प्राप्त
सुख-दुःखमें चित्तपर असर हुए बिना रहता नहीं और
अवस्थातक पहुँचनेपर उसे टालनेकी आवश्यकता
रहती। जबतक अहंता, ममता, कामना और आसक्ति
तबतक हम मृत्युशील संसारके स्तरमें खड़े हैं, तब

अशान्तिका सङ्ग नहीं छूट सकता; अशान्तिके नये-नये कारण पद-पदपर प्रत्यक्ष होते रहते हैं।

आत्माकी अनश्वरता और देहका विनाशीपन प्रत्यक्ष है। गीताके दूसरे अध्यायके ग्यारहवें श्लोकसे तीसवें श्लोकतक श्रीभगवान्‌ने इसका विस्तारपूर्वक विवेचन किया है। अविनाशी आत्माका इस विनाशी देहके साथ आरोपित सम्बन्ध है और इसी सम्बन्धके कारण हमें सुख-दुःख होता है। संसारमें न मालूम कितने प्राणी नित्य प्राणत्याग करते हैं, परंतु हमारा उनके साथ ममताका सम्बन्ध घनिष्ठ न होनेसे हमें उतना दुःख नहीं होता, जितना उनके सम्बन्धियोंको होता है; सम्बन्धियोंमें भी ममताकी न्यूनाधिकताके अनुसार दुःखकी अनुभूतिमें तारतम्य रहता है।

× × ×

कोई साथ नहीं है तो क्या है; भगवान् सदा साथ हैं और प्रत्येक कार्यमें उनका मङ्गलमय हाथ है। भगवान् गाइड करेंगे—जैसा करना होगा, वैसी बुद्धि देंगे। सावधान रहे—भगवद्विश्वास न हिल जाय और किसीके अहितकी भावना हमारे मनमें न आ जाय। भगवान् सब मङ्गल ही करते हैं। पता नहीं, भगवत्कृपा कब, किस रूपमें हमारे सामने प्रकट होती है। विपरीत लगनेवाली स्थितिमें हों तो हमारी परीक्षा होती है।

× × ×

श्रीभगवान् मङ्गलमय हैं; उनकी देख-रेखमें ही
कुछ होता है। भगवान्‌की कृपा ही सब कुछ कराती
हमलोग जबतक भगवान्‌के सामने निर्दोष हैं, तब
यहाँकी किसी भी घटनासे हमारी यथार्थमें कोई
कदापि नहीं हो सकती। जो होना होगा, हो ही जाय
यदि हमारा दोष नहीं होगा तो हमपर क्यों कुछ
और यदि कुछ हो ही जाय तो वह किसी पूर्वकर्मके
दानोन्मुख प्रारब्धके कारण होगा; वह होना ही चाहि
उसमें हमारा मंगल ही होगा। हमें उसके लिये चि
क्यों करनी चाहिये ?

भगवान्‌के विधानके बिना कुछ होगा नहीं। विधा
बदलना किसीके लिये साध्य नहीं है और बदला भी
जाय ? वह मङ्गलमय भगवान्‌के मङ्गलमय हाथकी रचना
तथा हमारे मङ्गलके लिये ही है। हाँ, यदि हम सचाई
भगवद्विश्वासको छोड़कर अपने उद्देश्यसे गिरते हैं तो
गलती करते हैं। आखिर सत्यका परिणाम विजयमें
पर्यवसित होगा, चाहे वह हमारे इस जीवनमें सामने
आवे। अतः मेरा सभीसे यह अनुरोध है कि भगवान् और
सत्यपर तथा भगवान्‌के मंगलमय विधानपर निश्चि
विश्वास करके परिणामकी ओरसे तो निश्चिन्त हो जाइये
जो उन्होंने रचा है, वही होगा और वही मङ्गलमय होगा
चाहे देखनेमें भयानक ही हो। जरा-सी चिन्ता करके उन

कृपापर अविश्वास मत कीजिये। परंतु विश्वासको रखिये भगवान्‌पर ही, किसी चाल या चालाकीपर नहीं।

× × ×

यहाँका सम्बन्ध इस शरीरको लेकर ही है। पहले भी हमलोग कहीं थे, वहाँ भी घर-परिवार रहा होगा, उसकी अब याद भी नहीं आती, वैसे ही मरनेके बाद यहाँकी स्थिति होगी।

भैया ! भगवान्‌के विना संसार है ही अभावमय। यहाँ किसी भी स्थितिमें किसीको भी अभावके अभावका अनुभव नहीं होता। किसी-न-किसी अभावकी भावना मनमें खटकती ही रहती है और जबतक अभावका अनुभव है, तबतक प्रतिकूलता है और प्रतिकूलता रहते किसी भी हालतमें मनुष्य सुखी नहीं रह सकता। भगवान्‌का कभी अभाव नहीं होता। जो भगवान्‌को सर्वदा अपने समीप समझता है, वही अभावसे मुक्त हो सकता है और अभावकी मुक्ति ही मुक्ति है।

× × ×

भगवान्‌की कृपासे सब कुछ सफल होनेकी हमें आशा करनी चाहिये। श्रीभगवान्‌की प्रार्थनासे उनकी कृपाका अनुभव पद-पदपर और पल-पलमें हो सकता है। भगवान्‌की उस कृपाके ही बलसे नामका प्रभाव इतना फैले कि हम सबका भावी जीवन उनके नाम-परायण हो जाय।

भगवान् ऐसी कृपा रखें कि हम अपने जीवनमें कोई ऐसा कार्य न कर बैठें, जिससे उनके कहानेवाले ह[...] कलंकका जरा भी कण स्पर्श कर सके। उनकी [...] हमारा जीवन पवित्र हो, हमारे आचरण विशुद्ध हों हमारा चरित्र सर्वथा सात्त्विक तथा उज्ज्वल हो उन्हींकी प्रेरणासे हम उनके नामके साधन और प्र[...] यन्त्रवत् निमित्त बनें। हमें कभी अभिमान छू न [...] भगवान्‌की कृपापर भरोसा रखना चाहिये और य[...] निश्चय रखना चाहिये कि उनकी कृपासे असम्भ[व] सम्भव हो सकता है।

× × ×

संसारकी कोई भी स्थिति भगवद्विश्वासी मनु[...] न हर्षित कर सकती है, न उद्विग्न ही। सारी स्थिति[...] उसके लिये सुखद खेल होते हैं। वह न किसी स्थि[...] आकाङ्क्षा करता है, न किसी स्थितिसे द्वेष करता [...] वह तो बस, सदा-सर्वदा अपने प्राणाराम प्रभुका [...] उनके इच्छानुसार रहनेमें ही आनन्दका अनुभव कर[...] तथा नित्य-निरन्तर कृतज्ञतापूर्ण हृदयसे उनका मधुर[...] स्मरण करता रहता है। इस आदर्शको सामने र[...] हमको भी सदा प्रसन्न ही रहना चाहिये। अपनी [...] भी स्थितिपर मन मैला करना भगवान्‌के विधानपर [...] मैला करना है। हमारा ऐसा व्यवहार कभी हमें [...] नहीं होना चाहिये।

× × ×

कालं तो बीत ही रहा है, कालके साथ ही मनुष्यकी आयु भी बीत रही है। संसारकी दुःखमयता तथा अनित्यता भी प्रत्यक्ष है। सभी दुःखपूर्ण तथा अनित्य हैं। इस अवस्थामें मनुष्यको संसारके मोहसे मुक्त होकर तुरंत भगवान्‌से अनन्य सम्बन्ध जोड़ लेना चाहिये, तभी वह दुःखसे मुक्त हो सकता है। पर मनुष्य भोग-सुखकी सैकड़ों आशाओंसे बँधा रहकर ऐसा नहीं कर पा रहा है—यही उसका प्रमाद है। इस प्रमादसे बचना बहुत ही आवश्यक है। सचमुच हम बड़ी भूल कर रहे हैं—दिन-रात दुःखका अनुभव करते हुए भी दुःखनाशके लिये उसी दुःखके बीजोंका संग्रह करते जा रहे हैं। इसको समझना चाहिये और समझकर संसारकी आसक्तिका परित्याग करना चाहिये। संसारमें वैसे ही रहना तथा बरतना चाहिये, जैसे नाटकका अभिनेता रंगमञ्चसे परे रहता है एवं रंगमञ्चके साथियोंके साथ बरतता है।

× × ×

मनमें अशान्ति रहनेका कारण है—भगवान्‌में, उनके मङ्गलमय विधानमें पूर्ण विश्वासकी कमी। भगवान्‌पर पूर्ण विश्वास हो जानेपर चित्त सर्वथा शान्त और सुखमय

हो जाता है; फिर किसी भी बाहरी परिस्थितिका प्रभाव नहीं पड़ता । भगवान्‌की इतनी महान् कृपा है जिसका कोई पार नहीं । हमारे चारों ओर सदा-सर्वदा कृपाका समुद्र लहरा रहा है । ऐसा अनुभव करना चाहिये कि हम उस कृपासुधा-समुद्रमें डूबे हुए हैं; ऊपर-नीचे दाहिने-बायें, आगे-पीछे—सभी ओर कृपा-सुधाकी मधुर तरंगें लहरा रही हैं एवं हमारा चित्त कृपासिन्धुमें अवगाहन कर अत्यन्त शीतल, शान्त, मधुर तथा परम पवित्र हो रहा है । प्रतिकूलतामें भगवान्‌के मनकी हो रही है इस भावनासे विशेष प्रसन्न रहा करें ।

× × ×

हमारे सबके मनोंकी बात प्रभु पूरी-पूरी जानते हैं और वे सर्वशक्तिमान् होते हुए ही हमारे परम सुहृद् हैं । अतएव वे वही करते हैं, जो हमारे लिये उचित, आवश्यक तथा लाभदायक होता है । हमें उनकी कृपा तथा उनके विधानपर विश्वास करना चाहिये । प्रभु हमारे मनकी नहीं होने देते, इसका अर्थ ही है—वे अपने मनकी करते हैं और हमें उनके मनकी प्रसन्नतामें ही सदा प्रसन्न रहना चाहिये; क्योंकि उसीमें हमारा मङ्गल है ।

× × ×

तुम यह तो निश्चय समझो कि तुमपर भगवान्‌की

कृपा है और उन्होंने तुमको अपना लिया है। तुम्हें भगवान्‌की कृपापर विश्वास करके यह निश्चय कर लेना चाहिये तथा संतोष भी करना चाहिये कि भगवान् जब जैसा ठीक समझते हैं, वही करते हैं और वही करेंगे, तथा उसीमें हमारा परम हित है। उन्होंने इतनी कृपा की है, वे कृपासिन्धु और भी कृपा करेंगे। मनमें निराश, उदास और चिन्ताग्रस्त कभी नहीं होना चाहिये। ××× खूब-खूब प्रसन्न रहा करो। प्रभुकी तुमपर बड़ी कृपा है। वे नित्य तुम्हारे पास हैं।

× × ×

प्रभु हम सबकी सुनते हैं, पूरी-पूरी सुनते हैं; पर वे करते हैं अपने मनकी। खास करके उनके लिये तो वे निस्संकोच होकर और भी अपने मनकी करते हैं, जिन्होंने अपने-आपको उनके समर्पित कर दिया है, अर्थात् जो उन्हींके हाथके खिलौने हो गये हैं—वे जो चाहें जैसे खेल खेलावें। 'प्रभुकी इच्छामें मेरा कोई वश नहीं है'—ऐसा सोचकर प्रभुकी इच्छामें हमलोगोंको परम प्रसन्नताका अनुभव करना चाहिये।

सदा-सर्वदा प्रभुका मङ्गलमय चिन्तन करना चाहिये तथा कहीं भी, कभी भी प्रभुको अपनेसे दूर नहीं समझना चाहिये। वे सदा-सर्वदा हमारे साथ रहते हैं—सोते-जागते,

खाते-पीते, सुख-दुःख, स्वर्ग-नरक—सभीमें, सभी स
अतएव उन्हें निरन्तर अपने अत्यन्त समीप समझकर
प्रसन्न रहना चाहिये। प्रभुको हृदयमें लाते ही
मलिनता, सारा अन्धकार नष्ट हो जायगा, वैसे ही
सूर्योदयके आभाससे ही अन्धकार मिट जाता है।

मृत्यु बूढ़ा-बालक नहीं देखती। हम सभीके शरीर
एक दिन यही दशा होनी है। जैसा जिसका संसारमें
होगा, उसीके अनुसार कुछ दिन रो-गाकर संसार उसे
जाता है। अपने कर्म-संस्कार ही साथ जाते हैं। इसी
मनुष्यको बड़ी सावधानीके साथ नित्य-निरन्तर भगवान्
स्मरण करते रहकर भगवत्सेवाके भावसे ही यथा
शुभ कर्मोंका आचरण करना चाहिये। मृत्युको देख
संसारसे तथा भोगोंसे वैराग्य होना चाहिये।

× × ×

हृदयमें भोगोंके बदले भगवान्का पवित्र निवा
जाय तथा प्रभुकी स्मृति प्राणोंके साथ घुल-
जाय—इसकेलिये जीवनका एक क्षण भी पाप-चि
और व्यर्थ चिन्तनमें न खोकर सदा-सर्वदा भगवत्स्मर
चेष्टा करनी चाहिये। जो वास्तवमें प्रभुपर निर्भर होता

परम प्रेमास्पद, करुणासागर, अकारण कृपालु, सहज सुहृद् हमारे वे प्रभु उसके जीवनको निर्विघ्न बनाकर अपना लेते हैं एवं उसके हृदयको अपना नित्य निवास बना लेते हैं और उसको अपने हृदयमें लोभीके धनकी-ज्यों बसा लेते हैं।

× × ×

प्रभुके लिये जो अपने मनको खाली कर देता है, उस मनमें प्रभु सदाके लिये आ विराजते हैं और उसपर अपना एकाधिकार कर लेते हैं। फिर, निकाले भी नहीं निकलते। प्रेमी भक्तको निरन्तर केवल उनकी स्मृति ही नहीं होती, केवल संनिधिका ही अनुभव नहीं होता, निरन्तर लीला-दर्शन भी होता रहता है तथा लीलामें सहयोगका भी उसे सौभाग्य प्राप्त होता है। वह लीलाका भी अनुभव करता है। इस प्रभुके नित्य मिलनको कभी कोई हटा नहीं सकता, बल्कि इसकी प्रगाढ़ता और स्पष्टता उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है। प्रेमराज्यमें प्रभु सदा साथ रहते हैं, यह सर्वथा निश्चित बात है। हमारी ही कमी है, जो हम प्रभुसे अनन्य प्रेम करके उनके नित्य सङ्गका अनुभव नहीं करते।

× × ×

भगवान्‌की सहज ही अनन्त कृपा है। उनकी कृपाके अनुभवसे बहुत आनन्द रहता है। हर अवस्थामें उनकी

अहैतुकी प्रीति तथा अकारण कृपाका अनुभव करते ए चाहिये। संसारकी सभी स्थितियोंमें सदा इस बा लेकर परम प्रसन्न होना चाहिये कि 'श्रीभगवान् मेरे उन्होंने मुझको पूर्ण रूपसे अपना लिया है। अतएव सद लिये वे मुझे अपनाये ही रखेंगे; क्योंकि वे अपना छोड़ना जानते ही नहीं। जीवन-मृत्यु—सभीमें उनका रहेगा, सचमुच रहेगा ही।' भगवान्‌को हम ही भूलते वे तो कभी नहीं भूलते। छोड़ना तो जानते ही नहीं। हम मनमें विश्वासकी कमी होनेसे हम ऐसा अनुभव कर पाते।

× × ×

नाम-जप, पाठ नियमितरूपसे करते रहना चाहि स्मृति अधिक-से-अधिक हो, अधिक-से-अधिक मधुर अधिक-से-अधिक जगत्‌की चिन्ताको हरनेवाली हो, अधि से-अधिक संनिधिका अनुभव करानेवाली हो, अधिक अधिक पवित्रतम भावोंका उदय करनेवाली हो और जग के शोक, भय, विषाद, मोह, ममता, अहंता—सबका सर्व नाश करनेवाली हो। ऐसी स्मृतिके लिये मनमें दृढ़ संक करके भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये।

[६]

रजोगुणकी वृद्धि होनेपर—प्रवृत्ति, लोभ, कामकी वृद्धि, चित्त-चाञ्चल्य और अधिकाधिक स्पृहा होती है। पर बढ़े हुए रजोगुणको यदि अध्यवसाय और कौशलसे सत्त्वाभिमुखी न किया जायगा तो उसका तमोमुखी होना स्वाभाविक है। प्रकृति स्वभावसे अधोगामिनी है। सत्त्व-प्रधान प्रकृतिके पुरुषोंको भी निरन्तर उत्थानके लिये—गुणातीत होनेके लिये सचेष्ट रहना चाहिये। 'जो होगा वही स्वीकार करना पड़ेगा'—यह कातरोक्ति अनुचित भाव है। प्रवाहमें बहना नहीं चाहिये, प्रवाहको अपने अनुकूल बहाकर उससे लाभ उठाना चाहिये। आरामकी इच्छा छोड़कर 'आ राम'-की धुन लगानी चाहिये। विषयोंकी विषभरी मोहिनीसे अपनेको सदा बचानेकी कोशिश करते रहो—मेरा सबसे यह बलपूर्वक अनुरोध है।

× × ×

योग-क्षेमकी चिन्ता न करें, केवल भगवान्‌का ही अनन्य चिन्तन करें। गीतामें योग-क्षेम-वहन करनेकी भगवान्‌की प्रतिज्ञावाले श्लोककी व्याख्या एक बार पढ़कर विचार करें और देखें कि हम जितना प्रयत्न बाह्य रूपसे

करते हैं, उसका थोड़ा-सा अंश भी भगवान्पर नि[illegible] रहकर उनका अनन्य चिन्तन-मनन करनेका प्रयत्न कर[illegible] हैं क्या ?

उत्तम बात तो यह है कि भगवान्पर निर्भर करनेवा[illegible] साधकको कभी मनमें यह संकल्प भी नहीं लाना चाहि[illegible] कि 'मैं निर्भर रहूँगा तो मेरा काम भगवान् और [illegible] सुन्दर कर देंगे।' वह तो बस, निर्भर होकर भजन करत[illegible] रहे। भगवान् कभी असुन्दर करते ही नहीं। फिर निर्भ[illegible] भक्तको कामसे क्या मतलब ? उसको तो भगवान्[illegible] भजनसे ही मतलब है; उसका तो बस, एक यही काम है[illegible] दूसरे काम बनें, बिगड़ें; रहें, उजड़ें—उनकी ओर उसक[illegible] दृष्टि ही नहीं जानी चाहिये। हाँ, यह सत्य है कि [illegible] भगवान्पर निर्भर करता है, निश्चय ही उसकी सँभा[illegible] श्रीभगवान् बहुत सुन्दर करते हैं।

× × ×

सृजन और संहार प्रभुकी लीलाके दो रूप हैं, जो बराबर अनवरतरूपसे प्रकट होते रहते हैं। प्रभुकी लील[illegible] देखनेवाला उनके प्रत्येक लीलाभिनयमें अभिनेताको पह[illegible] चानकर और उनकी विचित्र भाव-भङ्गिमाको देखकर प्रसन्न रहा करता है। वह न उनसे कुछ चाहता है न उनकी किसी लीलापर एतराज करता है; न मन मैला करता है और न किसी एक ही लीलापर आसक्त ही होता है। वह चाहता है लीलामयके साथ लीलामें खेलना,

और लीलामय उसे जब अपनी लीलामें शामिल कर लेते हैं, तब वह अपनेको परम कृतार्थ मानता है।

× × ×

वस्त्रालङ्कार-आभूषणादि अनादि कालसे हैं। अवश्य ही समय-समयपर इनके रूप बदलते रहते हैं। आभूषणोंमें कई आवश्यक हैं तथा शारीरिक और मानसिक रक्षा एवं उन्नतिके उद्देश्यसे धारण किये जाते हैं। साथ ही भिन्न-भिन्न अवस्थाओंमें भिन्न-भिन्न प्रकारके आभूषण उपयोगी साबित होते हैं। यही कारण है कि विभिन्न आश्रम और वर्णके स्त्री-पुरुषोंके, बालक, युवा, वृद्ध और सधवा-विधवाके आभूषणोंमें भेद है। वस्त्राभूषण केवल शृङ्गारके लिये नहीं हैं, इनके उपयोगका बड़ा रहस्य है। हमलोग उस रहस्यको नहीं जानते और शृङ्गारकी दृष्टिसे ही उनका उपयोग करते हैं। परंतु शृङ्गारके लिये, दूसरोंको अपना रूप-सौन्दर्य दिखानेके लिये वस्त्राभूषण धारण करना अत्यन्त हानिकर और पापका कारण होता है। वस्त्राभूषणके प्रति आसक्त न होकर, उनके तत्त्वको समझकर, यथायोग्य रीतिसे उनका प्रयोग करना ही उचित और आवश्यक भी है। आजकल वस्त्राभूषण धारण करनेका जो भाव है, उसका कारण शृङ्गार, बाह्य सौन्दर्य, फैशन अथवा इन्द्रियोंका दासत्व ही है। भगवान्‌के श्रीविग्रहको वस्त्राभूषण धारण कराना कल्पना नहीं है। भगवान्‌के उपासकके लिये यह उचित है कि वह अपने उपास्यदेवके

ध्यानके अनुसार उनके श्रीविग्रहको वस्त्राभूषणसे सुसज्जित करे। सधवा स्त्रीको उचित है कि वह अपने पतिदेवको शुद्ध रुचिके अनुसार केवल उनकी प्रसन्नताके लिये घरकी स्थिति देखकर आभूषण आदि धारण करे; इसमें कोई आपत्तिकी बात नहीं है। शृङ्गारकी दृष्टिसे तो अलङ्कार आदिका त्याग ही करना उत्तम है। अलङ्कारादिके रहस्य-को न जाननेवालोंके लिये यही निरापद बात है।

× × ×

घृणा किसीसे नहीं करनी चाहिये। जो विषयोंमें रमा रहकर भगवान्‌को भूल जाता है और व्यर्थ जीवन बिताता है, वह अपना नुकसान आप ही करता है। अपना नुकसान करनेवाला पागल या भूला हुआ प्राणी सदा ही दयाका पात्र होता है, घृणाका कदापि नहीं।

× × ×

इस संसारमें जिसका कोई नहीं होता, उसीके भगवान् होते हैं। संसारमें अपना कोई न होना तो सौभाग्य तथा भगवत्कृपाका फल है।

भगवान् तो कहते हैं—

जिसका कोई नहीं जगतमें, उसका प्रियतम होता मैं।
वह मेरे हियमें नित बसता, उसके हिय सुख-सोता मैं॥
नहीं छोड़ता कभी उसे मैं, रहता नित्य उसीके पास।
मैं ही उसका हृदय-स्वामी, वह मेरा निश्चय प्रिय दास॥

'जिसका जगत्‌में कोई नहीं होता, उसका एकमात्र प्रियतम मैं होता हूँ। वह निरन्तर मेरे हृदयमें बसता है

और मैं उसीके हृदयमें सुखसे सो पाता हूँ। मैं उसे कभी छोड़ नहीं सकता—नित्य-निरन्तर उसीके पास रहता हूँ। मैं ही उसके हृदयका स्वामी हूँ और वह निश्चय ही मेरा प्रिय दास है।'

इस प्रकार भगवान् ऐसे प्रेमीको केवल हृदयमें ही नहीं बसाते, केवल उसके हृदयमें ही नहीं रहते, वरन् निरन्तर उसके पास रहते हैं; उसे कभी छोड़ते नहीं, स्वयं उसके हृदय-स्वामी बनकर उसको अपना प्रिय दास बनाये रखते हैं। अतएव जो अन्य किसीका न रहकर केवल भगवान्का ही हो जाता है और जिसको भगवान् स्वीकार कर लेते हैं, उसका चित्त सचमुच वे सदाके लिये चुरा लेते हैं और इस चित्त-वित्तके बदलेमें अपनेको दे डालते हैं, पूरा-पूरा दे डालते हैं। मनकी साध तो प्रेमराज्यमें कभी पूरी होती ही नहीं; क्योंकि प्रेम अनन्त है। प्रेमीके हृदयकी जलन भी बड़ी मधुर होती है; क्योंकि वह प्रेम-वैचित्त्यवश नित्य पास रहनेपर भी नित्य वियोगका अनुभव कराती प्रकट होती है।

प्रेम भगवान्की अखण्ड और सुखमयी स्मृति कराता है। प्रभुकी स्मृति स्वभावतः ही दूरी, भेद और विस्मृतिका विनाश कर देती है और दिनोंदिन प्रेमरसके परिणाम तथा माधुर्यको बढ़ाती रहती है। प्रेम ही एक ऐसा रस है, जो सारी नीरसताका नाश करके जीवनको रसमय बना देता है। जीवनमें नीरसता रस प्राप्त करनेकी इच्छासे निरन्तर

कामका सेवन कराती है और कामसे नये-नये दोष, विका
दुःख, निराशा, विषाद आदि उत्पन्न होते रहते हैं। अ
बुद्धिमान् मनुष्यको सदा-सर्वदा पवित्र प्रेमरसका से
करना चाहिये, जो रसरूप, रसमय, रसराज प्रभुका सा
दूरी तथा समस्त भेदोंको मिटाकर नित्य-स्पर्श, नित्य-मि
करा देता है।

× × ×

मैं सर्वथा परतन्त्र हूँ, क्या करूँ। सोचता हूँ कुछ
तथा होता कुछ और ही है। इससे कभी-कभी तो ऐ
मन करता है कि व्यर्थमें सोचनेका पचड़ा क्यों रखा जा
परंतु दुर्मति मानती ही नहीं। अहंकार पछाड़ ही दे
है। फिर जब देखता हूँ कि मनकी कुछ भी नहीं होत
खेल वही खेलना पड़ेगा जो वह खिलायेगा, तब अप
अहंकार-विमूढ़तापर और उसकी लीलापर हँसी आती है
ख्याल करता हूँ, कठपुतलीको किसी बातके सोचने-समझ
के लिये 'मन' रखनेकी ही क्या आवश्यकता है? उस
काम तो सूत्रधारके संकेतपर बिना सोचे-समझे नाचना
है। उसमें 'मन' आ गया तो कठपुतली मनपुतली न ह
जायेगी! बस, इसी उधेड़-बुनमें रहता हूँ। वह जैसा खे
दिखाता है, देखता हूँ—कभी नीरव हँसता हूँ, कभी चुपके
चुपके रोता हूँ। बाहर तो सयाना बना रहता हूँ—अहं
कारकी मूर्ति होकर; भीतर वह निरन्तर छेद कर रहा है
चलनी-सा कर दिया है उसे। उसमें और किसीके टिकने

गुंजाइश नहीं रही। अपने इस प्रछापकी व्याख्या भी क्या करूँ! बस, नटवर जैसा-कुछ बना दे और नचा दे। आशीर्वाद दीजिये, जिसमें मन, बुद्धि और अहंकार—सभी नटवरके संकेतानुकूल नाचनेमें सहायता करें। ये भी उसीके हो जायँ और नाचा करें साथ-साथ। नाचते तो हैं, परंतु यह संदेह कभी-कभी होता है कि ये कहीं स्वतन्त्र तो नहीं नाचते हैं।

× × ×

जीवन तो प्रभुके चरणोंमें सदाके लिये समर्पित ही है। जीवन-पुष्प उनके चरणोंमें चढ़ा हुआ है। अब नया समर्पण और नया चढ़ाना क्या होगा? थोड़ी-सी सीमामें हम क्यों आबद्ध रहें? प्रभु-चरण सर्वत्र हैं, सदा हैं और हमारा अनन्त जीवन भी सर्वत्र, सदा, जहाँ प्रभु रखें, वहीं उनके समर्पित है। अतएव निश्चिन्त रहना चाहिये। प्रभु-पर चढ़े जीवनके लिये हम क्यों चिन्ता करें? जैसी उनकी इच्छा हो, करें-करावें। अपने तो उनके हाथकी कठपुतली बने रहना है। वे नचावें, घुमावें, ऊपर करें, नीचे करें, सुला दें, बिठा दें, भगा दें—जो कुछ भी करें, सदा उनके हाथके इशारेपर सब कुछ होता रहे।

× × ×

भगवान्‌की मधुर स्मृति बनी रहे और उस स्मृतिको लेकर चित्तमें निरन्तर आनन्द-सुधाकी धारा बहती रहे। कभी विषाद, शोक हो ही नहीं। जगत्‌के प्राणि-पदार्थसे

कोई आशा न रहे। जगत्की आशामें ही दुःख है। सच्चा सुख तो भगवान्‌के मङ्गल-विधानपर विश्वास करके नित्य आत्म-सुखमें निवास करनेमें ही है। यह सुख—भगवान्‌के सांनिध्यका सुख तुम्हारे पास है। यह धन कभी तुमसे पृथक् नहीं है। तुम इस धनके नित्य स्वामी हो। बस, नित्य-निरन्तर उसका अनुभव करते रहो और परमानन्दमें निमग्न रहो। मनमें जरा भी निराश-उदास मत होओ; उनका नित्य मङ्गलमय स्मरण सदा बना रहे।

× × ×

भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये कि कृपापूर्वक अपनी निर्मल विशुद्ध कामना-गन्ध-लेशरहित पवित्र प्रीति प्रदान करें। मनुष्य बहुत बार अपनी छिपी कामनाओंकी पूर्तिको प्रीति मान लेता है और यों विषयोंमें उलझा रह जाता है तथा जीवनकी अमूल्य घड़ियाँ व्यर्थ बीत जाती हैं, इसलिये सदा सावधानीके साथ मनको टटोलते रहना चाहिये कि उसमें कहीं जरा भी छिपी भोग-वासना न रह जाय। सारा मन पूर्णरूपसे केवल पवित्र भगवत्प्रेमसे भर जाय। नित्य-निरन्तर उसका पवित्र स्मरण होता रहे और उसीसे परमानन्दकी अनुभूति होती रहे। संसारके सुख-दुःख, हानि-लाभ, मानापमानादि द्वन्द्वोंका मनपर कोई असर न हो। मन सदा-सर्वदा भगवान्‌के चिन्तनमें परम सुख प्राप्त करता रहे; उसीमें रम जाय।

× × ×

प्रेमका दान भिक्षुकको नहीं मिलता, वह तो अधिकारीको ही मिलता है और अधिकारी वही है, जो प्रियतम प्रभुको सदा देता ही रहता है; कभी कुछ चाहता—माँगता नहीं। इसीमें नित्य नवीन पवित्र रसानुभूति होती है। भगवान् स्वयं लालायित रहते हैं, उसके मधुर प्रेमरस-सुधाका आस्वादन करनेके लिये! यही भजन है।

× × ×

मनका मिलन प्रत्यक्ष मिलनेसे कहीं अधिक महत्त्वका तथा सुस्पष्ट होता है। जिनको यह सौभाग्य प्राप्त है वे ही इसे जानते हैं। शरीर दूर रहनेपर भी मनके मिलनसे कितना अधिक निकटका सम्बन्ध रहता है, कितनी अधिक संनिधि रहती है, कितनी अधिक व्यवधानरहित रसानुभूति होती है, यह अनुभवका विषय है। मनका मिलन ही असली मिलन है। भगवान्ने गीतामें मन-बुद्धिके समर्पण—मनके मिलनपर ही विशेष जोर दिया है। शरीरका मिलन किसी भी कारणसे, किसीके द्वारा भी हटाया जा सकता है, पर मनके मिलनको हटानेकी शक्ति किसीमें नहीं है। यह चलते-फिरते, सोते-जागते, एकान्तमें-भीड़में, घरमें-मंदिरमें, महलमें, पूजा-स्थलमें, रणक्षेत्रमें—सभी अवस्था और समय बना रह सकता है। उसमें न एकान्त स्थानकी आवश्यकता है और न एकान्त समयकी। परम प्रसन्नतासे वह

हो सकता है, रह सकता है। अर्जुनसे भगवान्ने यही कहा था कि 'तुम मनसे मुझमें मिले रहो और शरीरसे काम करो'। अतएव शरीर घरमें रहे, घरके काममें रहे—मन भगवान्के पास सदा रहे या मनमें केवल भगवान् ही सदा बसे रहें—अपना एकाधिपत्य जमाकर, मनके एक-एक कोनेमें छाकर। मीराँने कहा—'हृदय बसी वह माधुरी मूरति उर बीच आन अड़ी।' हृदयमें किसी दूसरेके लिये क्षणभरके लिये भी स्थान न रहे—'नाहिन रह्यो हिय में ठौर'। मीराँ बोली—

औरोंके पिया परदेस बसत हैं, लिख-लिख भेजें पाती।
मेरे पिया मेरे हिये बसत हैं, मिली रहूँ दिन-राती॥
और सखी मद पी-पी माती, मैं बिनु पीये माती।
मैं मद पीयो प्रेम भठीको, छकी रहूँ दिन-राती॥

यों दिन-रात मिले रहना और प्रेममदसे छके रहना मनके मिलनसे ही सम्भव है—

चलत, चितवत, दिवस जागत, सुपन सोवत रात।
हृदयतें वह स्याम मूरति छिन न इत उत जात॥

[७]

हम सबपर श्रीभगवान्‌की बड़ी कृपा है। भगवान्‌की इस कृपापर विश्वास रखकर इस महती कृपाके बलपर जगत्‌के सारे विघ्न-बाधाओंको हटाते हुए, सारे पाप-तापोंको समूल ध्वंस करते हुए भगवान्‌के पावन पथपर सदा बढ़ते रहना चाहिये। भगवान्‌की कृपाका भरोसा रहेगा और निर्मल निष्काम पवित्र प्रेमकी प्यास होगी तो इन्द्रिय-भोगोंकी लालसा सर्वथा समाप्त होकर परम पावन भगवत्प्रेम-सुधा-रसका असाधारण नित्यप्रवाही झरना प्राप्त हो जायगा। वह तो प्राप्त ही है; हम ही अपनी अनन्य और एकान्त आकाङ्क्षाकी कमीसे उससे दूर हो रहे हैं।

भगवान्‌की अनन्त अपार कृपापर भरोसा करके सदा यह विश्वास रखना चाहिये कि सब-कुछ हमारे मङ्गलके लिये ही हो रहा है, जहाँ प्रेमका राज्य है, वहाँ तो मङ्गलका प्रश्न भी नहीं है; वहाँ तो पूर्णतया केवल अपने परम प्रेमास्पद भगवान्‌की इच्छा पूर्ण होनेमें सब-कुछ है। हममें सदा-सर्वदा प्रसन्न रहना चाहिये। विषाद-खिन्नता तमोगुणके लक्षण हैं एवं प्रसन्नता-प्रफुल्लता सत्त्वगुणके। अपने भगवान्‌को प्रसन्न देखकर सदा-सर्वदा हम प्रसन्न ही रहें।

× × ×

बिना मनके भी तीर्थ-स्नान, भगवन्नाम-जप तथा दर्शनका पवित्र फल होता है। तुम मनको सदाके प्रभुके मधुरतम स्मृति-सागरमें डुबा देना चाहते हो, सर्वोत्तम है। प्रभुके पावन चरणकमल ही सर्वश्रेष्ठ तीर्थ हैं। बिना किसी अन्य स्मृतिके तथा बिना आशा-आकांक्षाके एवं बिना निज-सुखकी किसी चा यदि कोई प्रभुके चरण-सुधा-सागरमें अपने मनको कर दे तो उसके समान न तो कोई सुखी है, न सौभा शाली है; न पुण्यवान् है, न साधक है और न प्रेमी ही अतएव तुम्हारी यह चाह तो बहुत उत्तम है।

भगवान्‌की बड़ी ही कृपा है। उनकी कृपाका तो कोई अन्त ही नहीं है। वे हमारी ओर, हमारे का ओर देखते ही नहीं; सदा सहज कृपा ही बरसाते रहते हम यदि इसे मान लें तो हमारे प्रत्येक कार्यको वे अ पूजा मान लेते हैं।

× × ×

संसारका रूप तो सामने है; यहाँके तमाम भो सर्वथा वितृष्णा, विरक्ति हो जानी चाहिये। किसी हेतुसे, किसी भी निमित्तसे संसारके भोग-पदा आसक्ति-ममता नहीं होनी चाहिये—भगवान्‌के निमित्त नहीं। भोगोंकी आसक्ति-ममता भगवान्‌के निमित्तको देती है और अपना पूरा आधिपत्य जमा लेती है। म आसक्ति सारी और पूरी भगवान्‌में ही होनी चाहि

ऐसा होनेपर न तो किसी विषयकी कामना हो सकती है, न किसी पदार्थके न मिलनेसे या चले जानेपर दुःख होता है; न जानेका भय और चिन्ता होती है और न द्वेष होता है। मन सदा ही प्रफुल्लित तथा शान्त रहता है। विषयासक्ति तथा विषय-ममता ही बन्धन हैं। ये बहुत बुरी चीज हैं; इनका लेश भी नहीं रहना चाहिये।

भगवान्‌पर विश्वास होनेपर संसारकी विपत्तिसे मन डावाँडोल नहीं होता। विश्वास बढ़ाना चाहिये। जितना ही विश्वास बढ़ेगा, उतनी ही चित्तमें शान्ति आयेगी।

× × ×

बस, इतनी ही बात है—

१–भगवान्‌पर, भगवान्‌की कृपापर सदा पूर्ण अडिग विश्वास रखना।

२–'भगवान् हमको अपना चुके हैं; हम उनके हो गये हैं, उन्हींके रहेंगे; वे हमें कभी छोड़ नहीं सकते, हम उन्हें कभी छोड़ नहीं सकते; भगवान् एक बार ग्रहण करनेपर फिर छोड़ना जानते ही नहीं।'—इस बातपर पूरा-पूरा निश्चयपूर्ण विश्वास रखना।

३–नित्य-निरन्तर भगवान्‌का मधुरातिमधुर स्मरण करना।

४–भगवान् अपनी मङ्गलमयी इच्छाके अनुसार हमें जहाँ, जैसे, जब रखें उसीमें प्रसन्न रहना; क्योंकि इसीमें उनको सुख है।

५–भगवान्‌से अपने सुखके लिये कभी कुछ भी चाह नहीं; सदा-सर्वदा उन्हींको चाहको पूर्ण करते रहना।

६–संसारके तमाम भोगोंसे, विषयोंसे सदा विर रहना—उनकी ओर कभी मन न चले, दृष्टि न जाय। ब एकमात्र भगवान्‌के सौन्दर्य, माधुर्य तथा प्रेमरस-सुधा-पा ही मन सदा मतवाला बना रहे, उसीमें संतुष्ट रहे, उ रमण करे, उसीकी बात सोचे एवं उसीकी कहे।

× × ×

संयोग-वियोग प्रभुके विधानके अधीन हैं; हम उ लिये चिन्ता क्यों करें ? उन्होंने ही संयोग दिया; वे चाह तबतक संयोग रहेगा, चाहेंगे तब वियोग हो जायगा सब उन्हींके अधीन है। अपनेको तो सदा-सर्वदा उ निर्भर रहना है। फिर शरीरके संयोगका महत्त्व ही है ? महत्त्व तो आत्माके नित्य पवित्र संयोगका है। कभी वियोगकी सम्भावना है ही नहीं। इसलिये चिन्ताको सर्वथा छोड़ देना चाहिये और सदा-सर्वदा प्रसन्न रहना चाहिये। जरा भी मनमें निराश एवं उ नहीं होना चाहिये। शान्तिकी प्राप्ति और चिन्ताका तो केवल प्रभुके साथ जीवनका सम्पर्क हो जानेपर होते हैं। संसारमें बड़ी-से-बड़ी सफलताको प्राप्त मनुष्य सदा जलते ही रहते हैं। फिर असफलतामें, रोगमें, प्र कूलतामें चिन्तित होना कौन आश्चर्यकी बात है ? मनुष्य मिथ्याभिमान, ममता, कामना, आसक्ति—ये ही उ दुःखके कारण हैं।

× × ×

संसारका संयोग-वियोग तो प्रारब्धाधीन है; इसी प्रकार जीवन-मरण भी है। पर सदा यह निश्चय मानना चाहिये कि प्रभु सदा-सर्वदा—रात-दिन हमारे पास रहते हैं; हमसे कभी विलग होते ही नहीं; बल्कि एक-दूसरेमें स्थित रहते हैं। 'मयि ते तेषु चाप्यहम्।'—वे मेरेमें रहते हैं और मैं उनमें रहता हूँ।'—यह भगवान्की वाणी है। अतएव अपनेको नित्य भगवान्में और भगवान्को नित्य-निरन्तर अपनेमें देखकर सदा प्रफुल्लित रहना चाहिये; कभी किसी प्रकार भी विषाद नहीं करना चाहिये। कहीं भी रहो, नित्य-निरन्तर भगवान्में रहो और भगवान्को अपनेमें रखो। क्षणभर उन्हें न भूलो, फिर वे तो भूलेंगे ही नहीं; वे तो लोभीके धनकी तरह सदा हमें अपने हृदयमें ही बसाये रखेंगे।

× × ×

जगत्में, जगत्के किसी प्राणि-पदार्थमें, लोक-परलोकके किसी भी भोगमें आसक्ति-ममता न रहे। भगवान्में ही अनन्य ममता हो जाय—एक भगवान्के सिवा और किसीमें कहीं भी मेरापन न रहे। यह ममता भी प्रेमपरिपूर्ण हो; उसमें अन्य कोई हेतु न हो—

अनन्यममता विष्णोर्ममता प्रेमसंगता।

फिर चित्तमें कहीं अशान्ति एवं दुःख होंगे ही नहीं। जबतक जगत्के प्राणि-पदार्थोंमें राग है, तभीतक अशान्ति-दुःख हैं। शरीर, प्राण, मन, बुद्धि, आत्मा—सभी अनन्य-भावसे श्रीभगवान्को समर्पित कर दिये जायँ। केवल भगवत्परायण होकर, भगवान्की सेवाके भावसे विभावित

होकर सर्वेन्द्रियद्वारा अनन्यरूपसे भगवान्का अनुशीलन-सेवन करना चाहिये।

रसमयत्व, आनन्दमयत्व, प्रेममयत्व भगवान्का पर स्वरूप है। इस स्वरूपकी प्राप्ति प्रेमरूपा अनन्य-भक्ति ही होती है। एक भगवान्को छोड़कर जब चित्तकी अन्य किसी ओर भी न रहे—मनकी सब प्रकारकी सां फल-वासना सर्वथा छूट जाय और समस्त इन्द्रिय-वृत्ति केवल श्रीभगवान्में ही अनन्य ममतायुक्त होकर उन्हीं सेवामें नियुक्त हो जायँ, तभी प्रेमरूपा भक्तिकी सि होती है।

तुम इन सब बातोंपर ध्यान देकर अपने जीवन भगवान्की मूर्तिमान् सेवा बना लो। ऐसा प्रयत्न कर जिससे भगवत्कृपाके बलपर केवल एक भगवान् ही जीव में सर्वस्व होकर रह जायँ; अन्य कुछ मनमें रहे ही नहीं

× × ×

प्रभु-प्रेम वास्तवमें हृदयका गुप्त धन है। वह तो प्र क्षण बढ़ता ही रहता है। रुकता-घटता-मिटता तो वह जो किसी कामना-वासनाजनित हो अथवा जिसका आ लौकिक रूप, गुण, सौन्दर्य, ऐश्वर्य हो। प्रभु-प्रेम इसी परम निर्मल और अत्यन्त सूक्ष्म होता है कि वह काम वासनाशून्य केवल हृदयका परम धन होता है।

× × ×

मनमें निरन्तर प्रभुकी स्मृति-संनिधिका जो अनु होता है, यह बहुत ही उत्तम बात है। शरीर कहीं भी

किसी भी स्थितिमें रहे—मनमें यदि सदा प्रभु बसते हैं तो हम प्रभुके पास हैं और जहाँ प्रभु बसते हैं, वहाँ जगत्के काम-क्रोधादि दूषित विकारोंकी तो बात ही क्या है, जगत् भी नहीं आ सकता। श्रीतुलसीदासजीने संसारको ललकार-कर कहा है—'संसार! तुम मेरे समीप नहीं आ सकते; तुम वहाँ जाओ, जिसके हृदयमें नन्दनन्दन न बसते हों'—

'सहित सहाय तहाँ बसि अब, जेहि हृदय न नंदकुमार।'

गोपियोंने तो संसारकी बातसे बहुत ही दूर परमात्मा-तकके लिये अपने हृदयमें स्थानका अभाव बताया और दिन-रात सभी अवस्थामें श्यामसुन्दरके हृदयमें बसे रहने-का अनुभव बतलाया है—

नाहिंन रह्यो हिय महँ ठौर!
नदनंदन अछत कैसे आनिये उर और॥
चलत, चितवत, दिवस, जागत, सुपन, सोवत, रात।
हृदै तें वह स्याममूरति छिन न इत उत जात॥

उस व्यक्तिका महान् सौभाग्य है, जिसके हृदयमें नित्य प्रभु बसते हैं। जो भगवान्‌को नित्य-निरन्तर अपने मनमें रखता है, भगवान् भी उसको नित्य-निरन्तर अपने मनमें बसाये रखते हैं—वैसे ही, जैसे लोभी धनको बसाये रखते हैं—'लोभी हृदय बसतु धनु जैसें।' बल्कि प्रेमीजनके तो भगवान् स्वयं प्रेमी बन जाते हैं और उसे सुख पहुँचानेमें ही स्वयं सुखका अनुभव करते हैं तथा इसीलिये उसके हृदयमें नित्य छाये रहते हैं।

बस, भगवान् क्षणभरके लिये भी मनसे न निकलें;

इसमें सावधानी रखनी चाहिये। जगत्का कोई भी विष कोई भी प्रलोभन, कोई भी दुःख, कोई भी सुख हम मनको क्षणभरके लिये भी अपनी ओर न खींच सके, इस लिये सदा सचेष्ट रहना तथा भगवान्की असीम अतुल कृपापर विश्वास रखकर नित्य निश्चिन्त रहना चाहिये।

× × ×

भगवान्की स्मृति बराबर बनी रहे, इस बातका पू ध्यान रखना चाहिये। जीवन क्षणभङ्गुर है; पता नहीं कब किसका अन्त आ जाय। मानव-जीवनका एक-ए क्षण अमूल्य है और भगवान्की स्मृतिके लिये है। यहाँ कुछ भी अपना नहीं है। सभी असार है और अन्तमें दुः प्रद है—इस बातका ध्यान रखकर विषयमात्रसे विरि पूर्वक भगवान्का स्मरण करना चाहिये। एक-एक क्ष भगवान्के प्रति लगा रहना चाहिये।

मनमें अनुकूलता-प्रतिकूलताको लेकर क्षोभ न हो हर अवस्थामें चित्त शान्त रहे। अपमान, निन्दा, दुः वियोग, रोग, दारिद्र्य, अभाव—सभीमें भगवान्की कृ की या स्वप्नवत् असत्ताकी अनुभूति हो। सावधानीके सा मनुष्य-जीवनको सफल बनाना चाहिये। जीवनकी सफल भगवान्के अखण्ड स्मरणसे और भोगोंके प्रति अत्यधि विरक्तिसे ही हुआ करती है।

× × ×

भगवत्प्रेम वास्तवमें बड़ी ही विलक्षण वस्तु है। प्रे प्रतिकूलता यदि भासती भी है तो वह भी पवित्र प्रे

कारण और प्रेमके लिये ही भासती है। इसी प्रकार अनुकूलतामें भी प्रेम ही कारण होता है। भगवत्प्रेममें निज-सुखकी इच्छा नहीं रहती और न अपने इन्द्रिय-भोगोंकी तनिक भी वासना रहती है। प्रेमीके द्वारा जो कुछ होता है, सब अपने प्रेमास्पद प्रभु श्रीभगवान्‌के लिये ही होता है। यही उसका 'अपना सुख' है। इसीसे उसकी सभी क्रियाएँ 'स्वान्तःसुखाय' होनेपर भी वस्तुतः भगवान्‌के लिये ही होती हैं। अपने लिये तो उसका कोई काम शेष रह ही नहीं जाता—

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥

(गीता ११। ५५)

भगवान्‌ने कहा—'अर्जुन! मेरा वह भक्त मेरा ही काम करता है, मेरे ही परायण होता है, मेरा ही भक्त होता है, मेरे सिवा कहीं भी उसकी आसक्ति-प्रीति नहीं होती। जब कहीं राग नहीं तो किसीसे वैर-द्वेष भी नहीं होता। ऐसा वह मेरा प्रेमी मेरे पास ही आता है।'

× × ×

आना-जाना, संयोग-वियोग प्रारब्धाधीन हैं; प्रभुके नियत विधानसे होते हैं। विधान नित्य मङ्गलमय है। प्रसन्नतापूर्वक भगवान्‌के विधानको स्वीकार करना चाहिये। संसारके प्राणि-पदार्थोंमें, प्रत्येक परिस्थितिमें राग-द्वेषरहित समबुद्धि होनी चाहिये। परिस्थिति लोकदृष्टिमें सर्वथा अनुकूल किसीके नहीं हो सकती; परंतु प्रत्येक परिस्थिति

भगवान्‌के मङ्गल-विधानसे आती है, यह विश्वास दृढ़ होनेपर प्रतिकूलता अनुकूलतामें परिणत हो जाती है। भगवान्‌के प्रेमराज्यमें तो भगवान्‌के सुखमें ही सुख है। अतएव वहाँ प्रतिकूलताको स्थान नहीं है । भगवान्‌पर, उनकी कृपापर विश्वास करनेसे मनुष्य सब दोषोंसे मुक्त हो जाता है ।

हमलोगोंको प्रभु-कृपापर विश्वास करना चाहिये—यह मनोभिलाष बहुत सुन्दर तथा आदर्श है—'निरन्तर प्रभुकी स्मृति हृदयमें बनी रहे, मन राग-द्वेषरहित होकर प्रभुके मधुर स्मरणमें नित्य-निरन्तर लगा रहे—यही प्रभुसे भीख माँगता हूँ। मनमें प्रभुका प्रेम, उनका नित्य-मिलन बना रहे।' प्रभु-कृपापर हमलोग विश्वास रखें तो उनकी कृपा सारे विघ्न-बाधाओंको हटाकर हमारी इस इच्छाको पूर्ण करेगी ।

भगवान्‌का स्मरण प्रतिक्षण बना रहे—यह ध्यान रखना चाहिये। घरके एवं जगत्‌के सारे काम उत्साहपूर्वक केवल भगवान्‌की सेवाके भावसे करने चाहिये। घरमें तथा घरकी वस्तुओंमें ममत्व न रहे । सेवाके भावसे ही घरका सम्बन्ध हो। ममता सारी भगवच्चरणारविन्दमें केन्द्रित हो जाय और जगत्‌की प्रत्येक परिस्थितिमें राग-द्वेषरहित समबुद्धि रहे—

ममता केवल राम सों, समता सब संसार ।
राग न रोष न दोष दुख, दास भये भवपार ॥

[८]

जब हम सब बातें सबके अनुकूल नहीं कर सकते और जब हमारी क्रिया, हमारी बात दूसरोंके प्रतिकूल होती है, तब दूसरे यदि हमारे प्रतिकूल करें तो इसमें हमें बुरा क्यों मानना चाहिये ? फिर भगवान्की ओर चलनेवाले तथा विषयासक्त लोगोंके तो मार्ग ही दो होते हैं और वे एक-दूसरेसे उलटे होते हैं। भगवान्के मार्गपर चलनेवाले लोगोंको विषयी लोग मूर्ख मानते हैं और वे उनका उपहास भी करते हैं। लोक-प्रतिकूलता तो उनके अङ्गका आभूषण बन जाती है। अतएव सदा, सब अवस्थाओंमें खूब प्रसन्न रहकर मनसे भगवान्की स्मृतिमें निमग्न रहना और भगवान्को अपने समीप अनुभव करते रहना चाहिये। यह विश्वास रखना चाहिये कि भगवान् अपने जनको कभी छोड़ नहीं सकते।

भगवान्के सम्बन्धमें यह समझना चाहिये कि भगवान् हमारे हैं; उनपर हमारा अधिकार है। भगवान्से डरनेकी आवश्यकता नहीं है; आवश्यकता है—उनको सुखी देखनेकी। हमारी प्रत्येक क्रियासे उनको सुख मिले, बस, यही साधना है और यही साध्य है।

× × ×

हमारे मानसमें परम पवित्र भाव सदा रहें; सदा भगवान्‌का ही चिन्तन होता रहे। कभी मनमें तामसिक भाव या विषाद शोक आवे ही नहीं। हर अवस्थामें प्रभुकी मङ्गलमयी कृपाकी अनुभूति होती रहे। प्रभु जो कुछ भी करते हैं, सो हमारे मङ्गलके लिये करते हैं। अतएव किसी प्रकारसे भी असंतुष्ट नहीं रहना चाहिये। तुमपर परिस्थितिका कोई भी प्रभाव नहीं पड़ना चाहिये। तुम हर अवस्थामें भगवान्‌की कृपाका तथा उनकी नित्य मधुर संनिधिका प्रतिक्षण अनुभव करते रहो। तुम्हारा मन सदा-सर्वदा भगवत्कृपा तथा भगवत्-संनिधिके आनन्दमें हँसता रहे। भगवान् अभी इच्छा पूर्ण क्यों नहीं करते, इस बातका दुःख नहीं करना चाहिये; क्योंकि भगवान्‌के समान हमलोगोंके सुहृद् भगवान् ही हैं और वे परम मङ्गलमय हैं तथा ज्ञानिशिरोमणि हैं; अतएव वे जो कुछ करते हैं, करेंगे, सो सर्वथा मङ्गल ही करते हैं और मङ्गल ही करेंगे। भगवान् तुम्हारे चित्तमें निरन्तर बसे रहकर तुम्हें शान्ति तथा परम सुखका अनुभव कराते रहें—यही उनसे बार-बार प्रार्थना करनी चाहिये।

× × ×

दूसरेके दुःखको अपना दुःख मानना अथवा दूसरेके दुःखका अपनेमें ही अनुभव होना तो संतका स्वभाव होता है, जो अत्यन्त आदरणीय और सर्वथा वाञ्छनीय है।

जगत्से सुखोंकी आशा ही दुःखोंकी जननी है। असलमें श्रीभगवान्‌के साथ जीवनका सम्पूर्ण सम्बन्ध हो जानेपर जगत्‌के साथ सम्पर्क रहता ही नहीं। भगवान्‌का प्रियजन वही है, जिसपर अन्य किसी भी प्राणि-पदार्थ-परिस्थितिका अधिकार न रहे, अर्थात् जो अन्य किसीके अधिकारमें न रहे, साथ ही उसपरसे सबका अधिकार उठ जाय तथा सबपरसे उसका अधिकार उठ जाय। फिर वह सर्वथा अपने प्राणनाथ प्राणप्राण प्रभुका और प्रभु सर्वथा उसके हो जाते हैं।

× × ×

गेंदको जिधरकी ओर ठोकर लगती है, उसी ओर वह उछलकर चली जाती है। जिधर 'वह' ले जाना चाहता है, उधर ही शरीर चला जाता है। मन तो एक ही जगह नित्य-निरन्तर रहता है। × × × × भगवान्‌का प्रत्येक विधान सर्वथा मङ्गलमय, कल्याणमय है। शरीरकी स्वाधीनता, पराधीनता कोई अर्थ नहीं रखती। स्वाधीन भावसे सदा समीप रहनेवाले भी मनसे दूर रह सकते हैं और शरीरसे अत्यन्त दूर रहनेवाले भी मनसे सदा अत्यन्त समीप रह सकते हैं। शरीर कहीं भी रहे, मनमें प्रभुका निवास रहना चाहिये। वह है ही, फिर विषाद, उदासी, कष्ट और दुःखको स्थान ही कहाँ? सूर्यके प्रखर प्रकाशमें अन्धकारको कहीं स्थान है?

स्मृति ही जीवन है, स्मृति ही सच्चा मिलन है। प्रभु कभी भूलते नहीं हैं। वे सदा-सर्वदा हमारे साथ, हमारे

अत्यन्त समीप रहते हैं—ऐसा विश्वास तथा अनुभव करते हुए निरन्तर उनके स्मृतिमय मधुर मिलनमें मग्न रहना चाहिये—

बिछुड़े नहीं न बिछुड़ सकते हैं, मुझसे कभी कहीं वे प्रियतम।
मिले-मिलाये रहते हैं अति मधुर हर जगह ही वे प्रियतम॥

इस प्रकार निरन्तर अनुभव करते हुए परम प्रसन्न रहना चाहिये।

संसारमें भगवान्‌के बिना केवल दुःख-ही-दुःख है—'दुःखालयम्'। सदा सुख केवल एकमात्र भगवान्‌में ही है। जब हमारे जीवनमें एकमात्र श्रीकृष्ण ही बच रहते हैं, तभी यथार्थ तथा नित्य सुखके दर्शन होते हैं। जहाँतक दूसरी विनाशी वस्तुओंका सम्पर्क रहता है, वहाँतक सुख नहीं हो सकता। अतएव सुख चाहनेवाले मनुष्यको सबका अभाव करके एकमात्र भगवान् श्रीकृष्णका ही नित्य साक्षात्कार करते रहना चाहिये। यही सत्य है और यही परमार्थ है। यहाँके किसी हानि-लाभका कोई भी महत्त्व नहीं है; ये सब खेल हैं। उनके मनकी सदा होती रहे, बस केवल श्रीश्यामसुन्दर ही सर्वत्र छाये हैं—

मरना-जीना, आना-जाना रखता कुछ भी अर्थ नहीं।
एक तुम्हारे मनकी हो, बस, स्वार्थ यही, परमार्थ यही॥

भगवान् मन-बुद्धिका समर्पण चाहते हैं। मन-बुद्धिके समर्पित हो जानेपर शेष सब-कुछका अपने-आप ही समर्पण हो जाता है। यही 'समर्पित जीवन' है; फिर जब

भी चिन्ता, भय, विषाद, मद-मान नहीं रह जाता, जीवन सर्वथा भगवान्का लीलाक्षेत्र बन जाता है। वे अपने इच्छानुसार जब, जैसा चाहते हैं, निस्संकोच खुलकर खेलते हैं और समर्पण करनेवालेके साथ सदा-सर्वदा एकात्मस्वरूप होकर घुले-मिले रहते हैं। ऐसी स्थितिमें मनमें सदा संतुष्ट रहना चाहिये कि भगवान्का हमसे कभी वियोग होता ही नहीं। वे सदा-सर्वदा हमारे पास, हमारे साथ, हमसे घुले-मिले हुए ही रहते हैं और इसका अनुभव भी होना ही चाहिये।

मनुष्यको निरन्तर भगवान्के संकेतके अनुसार करनेके लिये तैयार रहना चाहिये और वह तैयारी भी होनी चाहिये अत्यन्त प्रसन्न हृदयसे, भगवान्के प्रीत्यर्थ ही। जैसे कठपुतली सूत्रधारके इशारेपर सब कुछ करती है, इसी प्रकार हमें भी रहना चाहिये—बिना अहंकारके, बिना प्रयासके, सहज ही।

प्रेमकी वास्तविक प्राप्ति तो भगवान्के कराये ही होगी, पर अपनी ओरसे उसके लिये पूर्ण तथा तीव्र इच्छा हो जानी चाहिये। भगवान्की ओरसे तो उनका प्रेम सदा प्राप्त ही है; उसे स्वीकार करते ही प्रेम मिल जाता है, इसमें जरा भी संदेह नहीं है। यह परम सत्य है कि भगवान्की ओरसे प्रेम प्राप्त होनेपर भी हमारी मोहजनित भोग-लालसा हमें उस पवित्र तथा महान् प्रेम-धनसे वञ्चित रखती है। इसका हमें दुःख होना चाहिये—महान् यन्त्रणा मनमें होनी चाहिये कि 'हाय ! भगवान्की ओरसे सबकुछ

होते हुए भी हम पवित्र प्रेम-सम्पत्तिसे वञ्चित हो रहे हैं। इसके लिये भी भगवान्‌से ही प्रार्थना करनी चाहिये। मनमें यह विश्वास भी तीव्ररूपसे बढ़ाना चाहिये कि भगवान् अपना जो प्रेम हमें दे चुके हैं, उसके रसकी पूर्ण अनुभूति हमें होगी। संदेह—संशय जरा भी नहीं रहना चाहिये।

मनसे संसारको निकालना है और उसके स्थानमें पूर्णरूपसे भगवान्‌को भरना है। संसारकी कामना-वासना छिपी रहा करती है और वह कई बार भगवान्‌के नामसे भी अपनी पूर्ति करना चाहती है। उससे सदा सावधान रहना चाहिये तथा भगवान्‌के नामका जप सदा करते रहना चाहिये। नित्य-नियममें लापरवाही नहीं करनी चाहिये; उससे बहुत लाभ होता है। ममता केवल भगवान्‌में हो और भगवान्‌के नाते भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये ही घरका काम हो। ऐसा बारंबार निश्चय करना चाहिये—'संसार सदा दुःखमय है और भगवान् परमानन्दमय हैं।' भगवान्‌के साथ जीवन जुड़ जानेपर दुःख कभी होगा ही नहीं, यह निश्चित है।

तुम भगवान्‌पर तथा उनकी कृपापर विश्वास करके चित्तमें शान्ति रखो। जगत्‌के लोगोंकी ओर देखो, कितने दुखी हैं, कितने जल रहे हैं। उन लोगोंकी अपेक्षा तुम बहुत सुखी हो। तुम्हें विषयी लोगोंके वातावरणमें रहना पड़ता है, मनमें कई तरहके भय-संकोच रहते हैं,

यह ठीक है। इनको नाटकके खेलकी भाँति मानकर सहन करो और स्वयं नाट्य-मञ्चपर खेलनेवालेकी भाँति व्यवहार करो। वास्तवमें तुम्हारा एक भगवान्‌को छोड़कर कहीं कोई सम्बन्ध ही नहीं है। यह तो सब व्यवहारकी चीजें हैं। भगवान्‌से नित्य जुड़े रहो। अपनी आत्माका सम्बन्ध केवल एक भगवान्‌से ही रखो, फिर इन व्यवहारोंका असर आप ही कम हो जायगा। तुम्हारे मनकी सुननेवाला कोई नहीं है, न तुम्हारे मनकी कोई बात होती है, सो भी ठीक है। तुम अपने मनको अपना क्यों रखते हो ?

तुम्हारी एक-एक बात, छिपी हुई मनकी बात भी निरन्तर तुम्हारे अंदर रहनेवाले तुम्हारे भगवान् जानते हैं, सुनानेकी आवश्यकता ही नहीं है; और वे अपने मनकी करते रहते हैं। उनके मनकी होने दो। बस, तुम तो प्रसन्न रहो—मौजमें रहो—संसारकी चीज तो ऐसे ही रहेगी। घरमें नाटकके पात्रकी ज्यों रहो। मन उनका; वे कुछ भी करें-करावें।

तुम्हारे मनकी आतुरता बहुत ही उत्तम है; यही तो आर्तभाव है। पर तुम्हारे अंदर आतुरताके साथ ही तुरंत मिलन-जनित अपार सुखका संचार हो जाना चाहिये। भगवान् कभी बिछुड़ते ही नहीं। उनका नित्य-नित्य संयोग है और रहेगा। वे सदा ही सबके हैं; पर जो उनका हो चुका, उसके समीप, उसके अंदर रहनेमें तो उनको आनन्द-रस मिलता है। वे स्वयं प्रलुब्ध होकर वहाँ रहते हैं और

निरन्तर उसे अपने अंदर बसाये रखते हैं—'लोभी हृ
बसइ धनु जैसें।' वे निरन्तर उसका स्मरण करते रहते
उसे भूलना क्षणभरको भी उन्हें सहन नहीं होता। श्रीरा
जीने सीताजीसे कहलाया था—'सो मनु रहत सदा तोहि पाहीं

यहाँ जो भी परिस्थितियाँ हमें प्राप्त होती हैं, वे
परिणाममें हमारे मङ्गलके लिये पूर्वकर्मानुसार श्रीभगवा
द्वारा निर्मित होती हैं। ऑपरेशन करवानेपर शरीर
विषरहित होकर नीरोग हो जाना, मित्रके रूपमें घ
बसे हुए चोरका नाश हो जाना, किसी छोटी वस्तुका न
होकर उससे कहीं अधिक महत्त्वकी बहुत बड़ी वस्तु
प्राप्त हो जाना आदि जैसे हमारे लाभके लिये होता
उसी प्रकार यहाँकी किसी अनुकूल मानी हुई परिस्थिति
नाश भी परिणाममें उससे कहीं अधिक महत्त्वकी अ
परिस्थितिकी प्राप्तिके लिये ही होता है। कर्मोंका फ
देनेवाले भगवान् परम न्यायकारी होनेके साथ ही प
दयालु हैं और वे सबके सहज सुहृद् हैं। उनके द्वा
निर्मित कोई भी फल ऐसा नहीं होता, नहीं हो सक
जिसमें हमारा कल्याण न हो। फिर वे भगवान् सु
होनेके साथ सर्वज्ञ हैं, सर्वशक्तिमान् हैं और सर्वलो
महेश्वर हैं। उनके द्वारा भूल नहीं हो सकती। हम
वास्तविक हित किसमें है, इसे वे निर्भ्रान्त जानते हैं
सब कुछ करनेमें समर्थ हैं और उन्हें कोई रोक
सकता। वे सुहृद् हैं; इसलिये अहैतुक कल्याण करते हैं
ऐसी अवस्थामें किसी भी परिस्थितिको प्रतिकूल समझ

दुःखी होना, अशान्त होना तो भगवान्‌के सौहार्दपर अविश्वास करना है। अतएव तुम्हारी वर्तमान परिस्थिति निश्चय ही तुम्हारे भविष्यके मङ्गलके लिये है—मानो बड़ा सुन्दर भविष्य काली भयंकर नकाब डाले तुम्हारे सामने खड़ा है। नकाबके अंदरकी चीज सामने आते ही तुम परम सुखी हो जाओगे; परंतु विश्वास करनेपर अभी सुखी हो जाओगे। अतएव भगवान्‌के मङ्गल-विधानपर, उनकी नित्य अहैतुकी कृपापर विश्वास करो।

× × ×

तुमको निरन्तर भगवान्‌के प्रेममें विभोर रहना चाहिये तथा किसी भी प्रकारकी कोई चाह या किसी भी स्थितिकी कोई परवाह न रखकर प्रतिपल उनके मधुर मुसकानयुक्त मुख-कमलको हृदयके पवित्र तथा एकदर्शी नेत्रोंसे निहारते रहना चाहिये। तुमको इसमें बिना किसी संदेहके विश्वास करना चाहिये कि भगवान्‌ने तुमको अपना लिया है, अतः तुम अब निश्चिन्त रहो। अब चिन्ता या चिन्तन करना है तो केवल चिन्तामणिचतुर प्रभुका। रात-दिन उन्हींके साथ घुल-मिलकर रहना है। उन्हींका स्मरण करना है। उनके सिवा जगत्‌का कोई चिन्तन रहे ही नहीं। जगत्‌का कभी कोई चिन्तन हो तो यह भी केवल उन्हींके सम्बन्धसे, केवल उन्हींको लेकर ही हो; अन्य कोई सत्ता, सम्बन्ध, हेतु न रहे। ऐसा विश्वास करो; ऐसा बराबर निश्चय करो। संसारके चित्र कभी मनमें आवें तो या तो उन्हें ललकारकर निकाल दो, या उन्हें प्रभुके बना दो। यदि

तुम कहो कि 'मुझमें कोई बल नहीं है, कोई सामर्थ्य नहीं है' तो तुम केवल इच्छा और निश्चय करो, फिर सारा काम बना-बनाया है। तुम्हें अपने बलकी कोई आवश्यकता नहीं, तुम्हारी तो अनन्य इच्छा तथा अडिग निश्चय होना चाहिये, फिर प्रभु अपनी चीजको आप ही सँभालेंगे। उन्हें कहनेकी आवश्यकता नहीं है; हम केवल यही मानते रहें कि 'हम केवल उन्हींकी चीज हैं। उनके सिवा हमारा न कोई है, न किसीसे किसी प्रकारका सम्बन्ध है। सारे नाते-नेह, सारी प्रीति-प्रतीति, सारा अपनापन, आत्मीयताके सम्बन्ध एकमात्र उन्हींसे है। सब कुछ वे ही हैं।'— इस प्रकार बार-बार सोचो, निश्चय करो। है ऐसा ही। तुम्हारे निश्चयसे तुम्हें ऐसा अनुभव हो सकता है। जीवन-मरण, सुख-दुःख भी वे ही हैं, वे ही हैं।

मनुष्यकी बुद्धि कब, कैसी हो जाती है, कुछ पता नहीं। संसारसे आशा ही दुःखकी मूल है और भोग-कामना ही सारे पापोंकी जननी है। जगत्के भोगोंमें मन फँसा रहता है, उन्हींकी रात-दिन स्मृति रहती है। प्रतिकूलतामें महान् दुःख होता है तथा परिणाममें दुःखके कारण और भी बन जाते हैं। भगवान्की स्मृति ही जीवनका परम लाभ है। भोगोंसे वितृष्णा और भगवान्की स्मृति— इसीका प्रयत्न सावधानीसे करना चाहिये।

× × ×

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी लीला-माधुरीमें श्रीगोपाङ्गनाओंके दो भाव बड़े ही मधुर तथा परस्पर अत्यन्त सुखोत्पादक हुआ करते हैं। वे उनकी स्तुति करती हैं, अपनी अत्यन्त हीनताका प्रदर्शन करती हैं; साथ ही उन्हें चोर, कपटी, छलिया, निर्दयी—न मालूम क्या-क्या और बताती हैं। मैया यशोदा आदि वात्सल्यमयी गोपियाँ उन्हें चोर, शरारती, नटखट, ऊधमी, चपल, असंयमी, चटोरा आदि-आदि पता नहीं, क्या-क्या कहती हैं। श्रीकृष्ण इन सबको सुन-सुनकर बड़े ही प्रसन्न हुआ करते हैं। सैकड़ों स्तुतियोंसे वे वैसे प्रसन्न नहीं होते, जैसे गोपियोंकी प्यार-सुधाभरी गालियोंसे होते हैं। इस गालीमें न द्वेष है, न क्रोध है; यह तो प्रेमका एक मीठा स्वरूप है, जिसमें अमृत-ही-अमृत भरा है। यह रोष बड़ा शीतल-सुखद है। भगवान् इनसे बहुत ही प्रीति-लाभ करते हैं।

× × ×

तुम्हारे बगीचेमें बेलेके फूल खिलते हैं तो उनके बढ़िया-बढ़िया सुन्दर हार गजरे गूँथ-गूँथकर भगवान्‌को पहनाया करो—उन्हें पुष्प बड़े प्रिय हैं। फिर जिस पुष्पमें हृदयकी समर्पण-सुगन्ध भरी होती है, उसकी प्रियताका तो कहना ही क्या है! तुम्हारा यह पुष्प-पूजन वे सदा ग्रहण करते हैं, करेंगे। बस, करते ही रहो सुपुष्पोंसे—सुरभित सुमनोंसे उनकी नित्य एकान्त मधुरतम अर्चना; चलती रहे निरन्तर यह पूजा!

× × ×

यहाँकी प्रत्येक वस्तु क्षणभङ्गुर तथा वियोगशील है। इसमें ममता-आसक्ति होनेसे ही बन्धन तथा दुःख होता है। आत्माके नाते एक परमतत्त्व होनेपर भी जीवके नाते कोई किसीका नहीं है, न किसीके साथ किसीका स्थायी सम्बन्ध है। जैसे रेलके डिब्बेमें या धर्मशालामें, जहाँ-तहाँके यात्री आकर इकट्ठे हो जाते हैं और फिर समयपर अपनी-अपनी राह चल देते हैं, यही यहाँका हाल है।

इलाज करना-करवाना कर्तव्य है—सो करवाया है जाता है; पर इलाज करनेवाले भी मृत्युसे नहीं बच सकते। संसारके इस अन्तिम, अपूर्ण और दुःखमय स्वरूपको समझकर जीवनके असली उद्देश्यपर ध्यान देना चाहिये।

× × ×

असली फल वह है, जो अन्तिम परिणामके रूपमें प्राप्त होता है। चापलूसी या पाप करनेवाला मनुष्य यदि एक बार बढ़ते हुए दीखता है तो इसका मतलब यह नहीं कि यही अन्तिम परिणाम है। घरमें आग लगनेपर भी एक बार रोशनी दीख सकती है, पर घर खाक हो जाता है। असलमें सत्य और पुण्यकर्मका फल ही वास्तविक शान्तिदायक और सुखदायक हो सकता है। इसपर विश्वास करके शुद्ध आचरणमें लगे रहना चाहिये। किसी आकस्मिक उन्नतिसे लुभाकर पापमें प्रवृत्ति उचित नहीं।



[९]

मनुष्य परिस्थिति-परवश होता है; उसकी स्थितिपर विचार करना चाहिये, क्रियापर नहीं। मनुष्य कभी-कभी ऐसे कर्म कर बैठता है, जिनको वह स्वयं करना नहीं चाहता और करनेपर पछताता भी है।

प्रतिकूलतामें प्रभु-कृपाका दर्शन करनेके सिवा दुःख-नाशका और सहज उपाय नहीं है। मनकी स्थिति समझकर मनको तो ठीक करना ही पड़ेगा। प्रतिकूलता तो रहेगी ही। किसीको भी आजतक सम्पूर्ण अनुकूलताएँ प्राप्त नहीं हुईं। अतः प्रतिकूलतामें अनुकूल भावना करके ही प्रतिकूलताको मिटाना पड़ेगा। प्रत्येक परिणामको परम सुहृद भगवान्‌की कृपाका विधान मान लेनेपर प्रतिकूलता अनुकूलतामें परिणत हो जाती है; पर इसके लिये भगवान्‌को कृपापर, उनके कृपारचित विधानपर अटल विश्वास और भरोसा होना चाहिये। मनमें कभी निराशा, उदासी और भय आवे तो उसी समय भगवान्‌की मङ्गलमयी कृपाका स्मरण करना चाहिये। निश्चय करना चाहिये—भगवान्‌की हमपर बड़ी कृपा है। भगवान्‌के साथ चित्तका सम्पर्क दृढ़ हो जानेपर अपने-आप ही परम प्रसन्नता आ जाती है।

× × ×

जबतक यह प्रतिकूलताका काल्पनिक स्वरूप हमारे

सामने है और हम इससे दुःखी होते हैं, तबतक हमारा भगवान्‌पर विश्वास नहीं है । जबतक भगवान्‌में पूर्ण विश्वास नहीं है--भगवान्‌को हम अपना नहीं मानते--तबतक दुःख नहीं मिटेंगे ।

अँधेरेसे अँधेरा कैसे मिटे ? चोरोंको निकालनेका प्रयत्न करें और चोरोंके ही गिरोहमें निवास करें ! इसलिये यदि दुःखोंसे छूटना हो तो भगवान्‌में विश्वास करना होगा, भोगोंमें नहीं ।

कैसी बेतुकी बात है कि हम उन भगवान्‌पर विश्वास नहीं करते, जिनपर सारी सृष्टि, सारा ब्रह्माण्ड टिका हुआ है, जो सबका शासन-संरक्षण करते हैं एवं जो सर्वशक्तिमान् हैं। जो इतने महान् होते हुए भी हमारे सुहृद् हैं, उन भगवान्‌पर हमारा विश्वास नहीं है । हमारा विश्वास है—जगत्‌के क्षणभंगुर भोगोंपर, जिनका अन्त—भयंकर दुःख, क्लेश तथा व्याधियोंसे भरा हुआ है ।

हम सुखके रास्तेपर ही नहीं हैं, कारण भोगोंमें सुख है, हमारी यह दृढ़ आस्था है। वस्तुतः भोग हैं—'दुःख-योनि' । उन दुःखमय भोगोंमें हमने सुखकी कल्पना कर रखी है। दुःखमें ही हमारे सुखकी भ्रान्त धारणा अवलम्बित है, तब सुख मिले कैसे ? दुःखोंसे छुटकारा पाना हो तो हमें भगवान्‌में ही सुख मानकर दृढ़ताके साथ भगवान्‌पर तथा उनकी कृपापर विश्वास करना होगा,

उनकी शरणागति स्वीकार करनी होगी, उनपर सर्वथा निर्भर हो जाना पड़ेगा।

× × ×

अपुनपौ आपुनही बिसरयौ।
जैसे स्वान कांच-मंदिर में भ्रमि-भ्रमि भूकि मरयौ॥
ज्यों सौरभ मृग-नाभि बसत है, द्रुम तृन सूंघि फिरयौ।
ज्यों सपने में रंक भूप भयौ, तसकरि अरि पकरयौ॥
ज्यौं केहरि प्रतिबिंब देखि कै आपुन कूप परयौ।
जैसे गज लखि फटिक-शिला में दसननि जाइ अरयौ॥
मरकट मूंठि छांड़ि नहिं दीनी घर-घर द्वार फिरयौ।
'सूरदास' नलिनी के सुवटा कहु कौनैं पकरयौ॥

—हमने अपना ही बन्धन अपने लिये बना रखा है—अपने ही मोहपाशमें हम बँध रहे हैं। अपने-आप हम दुःखको बुलाते हैं और फिर रोते हैं। यदि हम अनुभव करें कि हम भगवान्के आनन्दसे निकले हैं, आनन्दमें स्थित हैं और भगवान्के आनन्दमें ही चले जायँगे तो दुःख रहे ही नहीं। हम अपनी असली चीजको तो भूल गये और जगत्के मिथ्या आनन्दमें, क्षणिक सुखमें विश्वास कर बैठे हैं। अनेक-अनेक जन्मसे हम इसी भ्रान्तिके जालमें फँसे हुए हैं—भोगोंमें, दुःखोंमें सुखकी आशा कर रहे हैं और मृगतृष्णाकी भांति उनमें भटक रहे हैं। यदि हमें इस

गोरखधंधेसे बाहर आना है तो एकमात्र उपाय है—भगवान्‌पर विश्वास'।

× × ×

जब हम स्वयं ठीक हो जायँगे तो हमारे सम्पर्कमें आनेवाले भी स्वतः ठीक हो जायँगे।

तेरे भावैं जो करौ भलौ बुरौ संसार।
'नारायन' तू बैठिकै अपनौ भवन बुहार॥

—किसीको उपदेश देनेकी आवश्यकता नहीं; किसीकी ओर ताकनेकी भी आवश्यकता नहीं है। हमें तो सबसे पहले अपने-आपको सुधारना है। श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभु जब मस्त होकर कीर्तन करते थे, तब वे उसमें इतने तल्लीन हो जाते थे कि अपनी सुध-बुध खो देते थे। जो भी उनके साथ कीर्तन करता, वह भी अपनी सुध-बुध खो बैठता। इसी प्रकार हमें दूसरेकी बुराइयोंको न देखकर सबसे पहले अपने दोषोंको देखना तथा उन्हें निकाल बाहर करनेका प्रयत्न करना चाहिये। दूसरोंके दोषोंको देखते-देखते जीवन निकल जायगा; न तो अपना सुधार हो सकेगा, न दूसरोंका।

× × ×

नित्य-निरन्तर भगवान्‌का स्मरण करते रहना चाहिये। यह निश्चय रखना चाहिये कि श्रीभगवान् अत्यन्त कोमल-स्वभाव, दीन-बन्धु, पतित-पावन हैं। वे सहज ही द्रवित

शील हैं। अपनी भूलोंके लिये पश्चात्ताप करते हुए हम उनकी दयालुतापर विश्वास करके उनके शरणापन्न हो जायँ तो वे हमें तुरंत अपना लेते हैं; वे कुछ भी दोष-अपराध नहीं देखते। वे अकारण कृपालु तथा सहज सुहृद् हैं। अतएव उनके शील-स्वभावकी ओर देखकर निरन्तर उनके शरणापन्न हो रहना चाहिये। जहाँतक बने, मनमें सांसारिक वासनाका—इन्द्रिय-तृप्तिकी इच्छाका लेश भी नहीं आना चाहिये। यह बहुत बड़ी बाधा है; इससे सदा बचना चाहिये। सब कुछ भगवान्के अर्पण करके उन्हींकी स्मृतिमें चित्तको अखण्डरूपसे लगाये रखना चाहिये। मनको कभी निराश, उदास, विषादग्रस्त नहीं होने देना चाहिये। भगवान् कहते हैं—'मा शुचः—मत सोच कर।' फिर भी यदि हम सोच करते हैं तो दो ही बात हैं—या तो हम शरणापन्न नहीं हैं, या भगवान्पर हमारा विश्वास नहीं है।

× × ×

भगवान्के हृदयमें रहनेपर कामना-वासनाका वैसे ही नाश हो जाता है, जैसे धनके प्राप्त हो जानेपर निर्धनताका। तथापि जबतक उस धनका प्रत्यक्ष बोध नहीं हो जाता, तबतक निर्धनता दीखती है। इसी प्रकार हमारे मनमें भगवान्के आ जानेपर भी, उनका मङ्गलमय स्पर्श सदा न होनेके कारण कभी-कभी कलुषित चीजें दिखायी दे जाती हैं; पर वस्तुतः यह कलुष नहीं है; भगवान्की मधुर मनोहर सत्ता ही इस रूपमें दिखायी देती है।

अपनेमें हीनताका बोध तो शुभ लक्षण है। यह प्रेम-साम्राज्यके विशुद्ध भावका एक निदर्शन है—

मिलना और बिछुड़ना जगमें है निश्चय प्रारब्धाधीन।
किंतु चित्तका स्मृति-सम्मेलन रहता नित अन्तरसे हीन॥
बढ़ती रहती ममता प्रतिपल रहता चित्त दिवस-निशि लीन।
होता नित्य-निवास हृदयमें रहती जैसे जलमें मीन॥

× × ×

बड़भागी वही है, जो भगवच्चरणानुरागी है। अपने भाग्यको कभी कोसना नहीं चाहिये। अधिक-से-अधिक भगवत्प्रेमका रसास्वादन कर अधिक-से-अधिक सौभाग्य प्राप्त करो।

हमें अपनी ओर देखकर कभी निराश नहीं होना चाहिये, वरं सदा-सर्वदा भगवान्‌की अहैतुकी कृपा तथा प्रीतिकी ओर देखकर परम आश्वस्त तथा निश्चिन्त रहना चाहिये।

सूर्यके सामने जैसे गहरे-से-गहरा अन्धकार नहीं टिक सकता, इसी प्रकार भगवत्कृपाके सामने हमारी कोई भी अयोग्यता नहीं ठहर सकती। भगवान् अकारण सुहृद् हैं। वे हमारी ओर देखकर नहीं, अपने स्वभावसे ही, सहज हो, प्रीति तथा कृपा करते रहते हैं। हमें उनके सहज सौहार्दपर विश्वास होना चाहिये। यह विश्वास ही पात्रता है।

× × ×

जो भगवान्‌का हो गया, जिसके भगवान् हो गये, उसपर दूसरे किसीका अधिकार-प्रभुत्व-प्रभाव कैसे रह सकता है? तुम अपने मनमें निश्चय करो--प्रभुके रहते तुम्हारे पास पाप, ताप, अशान्ति, जलन, दोष, दुर्विचार, शोक, भय, विषाद आदि आ ही नहीं सकते। इनको ललकारते रहो और दूरसे दिखायी पड़ते ही प्रभुके बलसे तुरंत मारकर इन्हें भगा दो। तुलसीदासजीने 'संसार'से कहा था—

मैं तोहि अब जान्यो संसार।
बाँधि न सकहिं मोहि हरिके बल, प्रगट कपट आगार॥

× × ×

सहित सहाय तहाँ बसि अब, जेहि हृदय न नंदकुमार।

× × ×

निज हित सुनु सठ! हठ न करहि, जो चहहि कुसल परिवार॥

'अरे संसार! मैंने तुझको अच्छी तरहसे जान लिया है। तू प्रत्यक्ष ही कपटका घर है। मुझे हरिका बल प्राप्त है, इससे अब तू मुझे नहीं बाँध सकेगा।……तू अपने सहायकोंके साथ वहाँ जाकर रह, जिस हृदयमें नन्दनन्दन भगवान् न बसते हों।……अरे शठ! अपने हितकी बात सुन! कुटुम्ब-परिवारसहित अपनी कुशल चाहता है तो हठ मत कर। (इतनेपर भी यहाँ आया तो सपरिवार मारा जायगा।)'

जिसने अपने हृदयके नेत्रोंसे भगवान्‌के हृदयकी ओर देख भर लिया है, वह भी आनन्दमय, प्रकाशमय हो जाता है—

जिसने देखा कभी हृदय-दृगसे प्रभुके अंतस्‌की ओर।
उसके द्वन्द्व मिटे सारे वह हुआ अमल आनन्दविभोर॥
तमके सभी कारणोंका, तमका हो गया समूल विनाश।
मिला उसे आत्यन्तिक निर्मल शीतल सुखद अनन्त प्रकाश॥

× × ×

भगवान्‌का मंगल-विधान ही सर्वत्र काम कर रहा है। मनुष्य अपने मनके अनुसार फल प्राप्त करना चाहता है, इसीसे वह निराश तथा दुखी होता है। भगवान् जब जैसी सुबुद्धि दें, तब वैसा काम तो अवश्य करना चाहिये, सुचारु रूपसे, पर आसक्तिरहित होकर, फल भगवान्‌के हाथ छोड़ देना चाहिये। न छोड़नेपर भी तो वह है भगवान्‌के हाथमें ही—अपने चाहनेसे इच्छानुसार फल नहीं मिलता। पर भगवान्‌के मंगल-विधानपर विश्वास करके उन्हींपर छोड़ देनेसे प्रतिकूल फल होनेपर भी हमें क्षोभ नहीं होता; प्रसन्नता बनी रहती है। सदा प्रसन्न रहनेका यही तरीका है कि हम फल भगवान्‌पर छोड़ दें तथा प्रत्येक फलकी मंगलमयतामें अटल विश्वास रखें।

प्रेमकी चीज तो इससे भी बहुत ऊँची है। वहाँ तो मंगल-अमंगल या लाभ-हानिकी कल्पना ही नहीं है।

प्रियतम भगवान्‌का मनोरथ ही अपना मनोरथ है। सदा, सर्वत्र, सब दिशाओंमें आनन्द-ही-आनन्द, रस-ही-रस है। कहीं दुःख क्लेश, विषाद, भय एवं चिन्ताको स्थान ही नहीं है। बार-बार इन पंक्तियोंको दोहराते रहो तथा इनके अनुसार बननेके लिये प्रयत्न करते रहो—

जीना-मरना, आना-जाना रखता कुछ भी अर्थ नहीं।
एक तुम्हारे मनकी हो बस, स्वार्थ यही परमार्थ यही॥
नष्ट हुए दोके अभावमें भय, चिन्ता, विषाद, मद, मान।
प्रेमीका यही स्वभाव होता है।

× × ×

भगवान्‌की परम आत्मीयताका तथा उनकी नित्य संनिधिका प्रत्यक्षवत् अनुभव करते रहना चाहिये। शरीरके लिये प्रारब्धानुसार जो होना होगा, होता रहेगा। उसकी जरा भी परवाह न करके अपने भगवान्‌के साथ सम्बन्धित रहकर सदा-सर्वदा परम प्रसन्नतामें—परम आनन्दमें मग्न रहना चाहिये। हमलोग शरीर और नामकी क्षुद्र सीमामें रहकर केवल उसीमें अनुकूलता-प्रतिकूलताका मिथ्या अनुभव करते हुए द्वन्द्वात्मक अनित्य मिथ्या सुख-दुःखोंसे ग्रस्त होते रहते हैं। एकमात्र भगवान्‌से सम्बन्ध मान लेनेपर, जो वास्तवमें है, हम इस द्वन्द्वात्मक जगत्‌से ऊपर उठ जाते हैं। फिर जगत्‌में किसी अनुकूलता-प्रतिकूलताका अनुभव नहीं होता, वरं समस्त रूपमें सदा एकमात्र अपने

भगवान्का ही अनुभव होता है। तुम इसका अनुभव कि करो। तुमपर भगवान्की अनन्त कृपा है। भगवान् स तुम्हारे पास—तुम्हारे साथ रहते हैं, इसमें जरा भी सं मत करो। सदा उनके साथ, उनके परमानन्द-साग डूबे रहो।

× × ×

हमारा जिसमें यथार्थ परम हित है, भगवान् हमें उ परिस्थितिमें रख रहे हैं—यह सदा विश्वास रख चाहिये। तुम शरीरकी ओर न देखकर अपने स स्वरूपको देखो कि तुम एकमात्र भगवान्की वस्तु हो शरीरका संयोग भगवान्का ही कराया हुआ और उ इच्छानुसार बरतनेके लिये है। इसका सुख-दुःख उनका ही है और सच्ची बात भी यही है कि किसी आत्मनिवेदित जीवनका सारा सुख-दुःख भी उन्हीं है। तुम तो बस, खेलकी वस्तु हो। हृदय उन हृदयकी सारी सुख-दुःखकी अनुभूति उनकी, भोक्ता कर्ता वे। उनको सुख चाहिये तो सुखका निर्माण कर सबके निर्माण-कर्ता वे ही हैं; जैसा चाहें, बनावें और भो अपने तो हँसना-ही-हँसना है। उनके मनकी क्या अनुभू हैं, इसको वे ही जानते हैं। पर यह याद रखना चाहि कि वे सर्वरूप होते हुए भी अपने प्रेमीके प्रेमरसास्वाद लिये लालसारूप बने रहते हैं। अतएव प्रेमीका जरा भी दुःख, प्रेमी-हृदयकी जरा-सी भी वेदना उन्हें

ला देती है, उनके हृदयमें इतना भयानक दुःख तथा इतनी भयानक वेदनाका निर्माण कर देती है, जिसकी कहीं कोई उपमा नहीं है। इसीलिये यह कहा जाता है कि श्रीकृष्णके वियोगमें राधा जितनी पीड़ित हैं, उनसे अनन्तगुना अधिक श्रीकृष्ण श्रीराधा-विरह-तापसे संतप्त हैं। यद्यपि विरह-पीड़ा, संताप भी सब स्वयं वे ही हैं, पर लीला तो है ही। तत्त्वतः तो श्रीराधा भी वे स्वयं ही हैं।

× × ×

असली स्वस्थता है--हमारी नित्य-निरन्तर 'स्व' में--अपने भगवान्में स्थिति बनी रहे; क्षणभरके लिये भी भगवान्को छोड़कर जगत्में स्थिति न रहे। केवल भगवान् हमारे और हम केवल भगवान्के ही रहें। वास्तवमें भगवान्के सिवा हमारी ममताका सम्बन्ध--असली 'मेरेपन'का सम्बन्ध किसी भी अन्य प्राणि-पदार्थसे है ही नहीं। सबसे व्यावहारिक सम्बन्धमात्र है; नाटकके खेलकी भाँति है। व्यावहारिक सम्बन्धको लेकर जहाँ जैसा करना आवश्यक है, करना चाहिये; पर वह केवल व्यवहार है। वस्तुतः उसके बनने-बिगड़नेमें, सृजन-संहारमें कहीं भी न लाभ है, न हानि; न सुख है, न दुःख है; न वास्तवमें अपना उससे कुछ भी बनता-बिगड़ता ही है। खेलमात्र है; खेलमें मरण हो या जन्म--दोनोंमें ही समता है। बस, यही भाव बना रहे। यह केवल भाव ही नहीं है, यही वास्तविक सत्य है। इस सत्यका सदा अनुभव करते रहो और हर-हालतमें

नित्य-नित्य परमानन्दमें रहो। यह आनन्द ही तुम्हारी सम्पत्ति है, तुम्हारा स्वरूप है--स्वभाव है, इसका बार-बार अनुभव करो। फिर तुम्हें पता लगेगा—तुम्हारे दिव्य अनन्त परम सुखके सामने सुरराज इन्द्रका स्वर्ग-सुख भी तुच्छ है, नगण्य है।

× × ×

यह सर्वथा सत्य है कि भगवान्का भजन, भगवान्का स्मरण, भगवान्में मन-बुद्धिका समर्पण--यह सब भगवत्कृपासाध्य ही है; अपने पुरुषार्थसे यह सब कुछ नहीं होता। परंतु बात इतनी ही समझनेकी है कि 'क्या हमपर भगवत्कृपा नहीं है?' 'भगवान्की कृपा नहीं है' ऐसा सम्भव ही नहीं है। उनकी अपार, अनन्त, असीम कृपा निरन्तर है; हम उसी कृपा-समुद्रमें डूबे रहते हैं। बस, कसर इतनी ही है कि उस नित्य अमित कृपापर हमारे विश्वासमें कुछ त्रुटि है। विश्वास जितना ही दृढ़ होगा और यथार्थ होगा उतनी ही कृपाकी अनुभूति होगी और उतना ही भगवान्का स्मरण अधिक होगा एवं जगत्का चिन्तन घटेगा। जगत्की अनुकूलता-प्रतिकूलता भी तभीतक है, जबतक हम जगत्के दास बने हुए हैं, अपनेको हमने विषयोंकी गुलामीमें समर्पित कर रखा है। जिस क्षण हम भगवान्के हो जायँगे, उसी क्षण सारी अनुकूलता-प्रतिकूलता मिट जायगी। भगवान्का मधुर स्मरणजनित परमानन्द ही हमारा जीवन बन जायगा। न जागतिक दुःख रहेगा, न सुख। ब्रह्माजीने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा था--

तावद् रागादयः स्तेनास्तावत् कारागृहं गृहम् ।
तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत् कृष्ण न ते जनाः ।

—'श्रीकृष्ण ! जबतक मनुष्य तुम्हारा नहीं हो जाता, तभीतक राग-द्वेषादि चोर लगे रहते हैं, घर कैदखानेके समान सदा कैदमें बाँधे रखता है और मोहकी बेड़ियाँ पड़ी रहती हैं।'

अतः हमें उनकी कृपाका अनुभव करके उनके ही बन जाना चाहिये। यह अनुभव कृपापर विश्वास करनेसे ही हो जायगा।

परिस्थिति कैसी भी हो, उसको भगवान्‌की कृपाके साथ जोड़कर उसका सदुपयोग कर लेना चाहिये। जगत्‌के प्राणि-पदार्थोंसे कोई आशा रखनी ही नहीं चाहिये।

× × ×

भगवान्‌को आत्मसमर्पण (सम्पूर्ण आत्मनिवेदन) करनेके पश्चात् अपने लिये कुछ भी सोचने-जैसी बात नहीं रहनी चाहिये। भला-बुरा सोचना भी उनको है और करना भी उनको है। अपनेको तो यह भी पता नहीं होना चाहिये कि भला क्या है और बुरा क्या है। सचमुच अभी भी यह पता हमें नहीं है। हम जिसे भली वस्तु मानते हैं, वह बुरी निकल आती है और जिसको बुरी मानते हैं, वह भली साबित हो जाती है। वस्तुतः यह भला-बुरा हमसे कोई सम्पर्क ही नहीं रखता। हमारी आत्मा, हमारे प्राण, हमारा जीवनधन, हमारा जीवनसर्वस्व, हमारा अपना,

हमारा पूर्ण ममतास्पद तो वह एक ही है, एक ही रहेगा। बस, यह विश्वास तथा यही सम्बन्ध अटल रहना चाहिये।

तुम ही मेरे प्राण-प्राण हो, तुम हो मेरे जीवनधन।
तुम ही अहंकार-ममता हो, तुम ही हो मेरे मति-मन॥
तुम ही मेरे परम-साध्य हो, तुम ही एकमात्र साधन।
तुम ही मेरे हो अनन्यगति, तुम ही मेरे आनँदघन॥
तुम ही हो सम्पत्ति अतुल, तुम ही हो मेरी कीर्ति-धवल।
तुम ही वर्तमान हो मेरे, तुम ही हो भविष्य उज्ज्वल॥
तुम ही हो सर्वस्व—तुम्हीं हो मेरे नित्य पराक्रम-बल।
तुम ही नित्य रहोगे मेरे, तुम ही मेरे हो केवल॥

—जिसका भगवान्के प्रति यह आत्मनिवेदन तथा अनन्य-सम्बन्धका भाव है, भगवान् सदा उसके हाथों बिके ही रहते हैं, उस अकिंचन भक्तके चरण-रज-कणसे अपनेको पवित्र करनेके लिये सदा-सर्वदा उसके पीछे-पीछे चला करते हैं। वे स्वयं यह कहते हैं—

अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः।

(भागवत ११। १४। १६)

वे पाप-पुण्य नहीं देखते; वे केवल इतना ही देखते हैं कि 'यह केवल और केवल मुझे ही अपना जीवन-धन, जीवन-सर्वस्व मानता है या नहीं, यह एकमात्र मुझे ही अपनेको पूर्णतया समर्पित कर चुका है या नहीं।'

[१०]

शरीर तो पराधीन है; मनुष्य चाहे तो उसका मन उसके अधीन हो सकता है और मनके द्वारा वह चाहे जहाँ निरन्तर रह सकता है; उसे कोई भी, जरा भी रोकनेवाला नहीं। मनकी संनिधि ही वास्तविक पास रहना है। शरीर बिल्कुल पास रहनेपर भी मनुष्य मनकी दूरीसे बहुत-बहुत दूर रहता है; उसे कभी समीपताका अनुभव होता ही नहीं। ऐसे हजारों उदाहरण हैं। मनकी निकटस्थता इतनी होती है कि कभी क्षणभरके लिये भी जरा-सी भी दूरी, जरा-सा भी व्यवधान, कुछ क्षणोंके लिये भी दूर होना सम्भव नहीं होता। इसके भी अनुभव हैं। अतएव शरीरकी बात न सोचकर निरन्तर मनकी ओर देखना चाहिये।

मनुष्य मनसे जहाँ है, वहीं वह है; आत्मासे तो नित्य एकता है ही। अतः तुम इतने उदास क्यों होते हो? वास्तवमें समर्पित जीवनमें दर्द उसका दर्द नहीं, शरीर उसका शरीर नहीं है तथा शरीरके रखने-छोड़नेकी बात सोचनेका उसे अधिकार नहीं है। जिसको वह समर्पित है, वही दर्दका अनुभव करता है और वही उस दर्दको कायम रखने, बढ़ाने, घटाने या मिटानेके लिये जिम्मेवार है। इसी प्रकार शरीर भी उसीकी अपनी वस्तु है। वह रखे या न रखे, कम रखे, कहाँ रखे, क्यों रखे—वही जाने।

अपने तो, बस, इतना ही जानते हैं कि वह हमारा है, वही हमारा है।

× × ×

तुमको अपने दोष दिखायी देते हैं, सो तो बहुत ही अच्छे लक्षण हैं। कहीं गुणाभिमान हो जाता तो भगवान्‌का वह अभिमान भङ्ग करनेकी बात सोचनी पड़ती। यह दैन्य भगवान्‌को अत्यन्त प्रिय है। अपनेको सदा ही नीच तथा अपने प्रति सदा ही भगवान्‌को स्वभावसुलभ प्रीति माननी चाहिये। वे हमारे गुणोंपर नहीं रीझते, अपने स्वभावसे ही रीझते हैं; और वह रीझ-रीतिका स्वभाव वहीं प्रकट होता है, जहाँ एक निश्चय होता है—'मैं हूँ तो उन्हींकी अपनी वस्तु, वे चाहे गुणोंसे सजावें, चाहे दुर्गुणोंसे।' बस, इस एक ही निश्चयपर रीझे रहना उनका स्वभाव है।

× × ×

मिलनकी अपेक्षा वियोगको प्रेमी संतोंने अधिक श्रेष्ठ माना है; क्योंकि मिलन तो एक ही समय, एक ही स्थानमें होता है, पर वियोगमें तो सारा संसार ही प्रियतममय हो जाता है। अतएव प्रेमीको वियोगमें सभी जगह, सभी समय, सभी पदार्थोंमें प्रियतम प्रभुके दर्शन-स्पर्शका निरतिशय परम सुख अबाधरूपसे निरन्तर प्राप्त होता रहता है—

है अति सुखकर मिलन मधुर, जिसमें होता प्रियका संयोग।
मृदुल मधुर मुसकान मनोहर अनुपम दिव्य सुधारस-भोग।

पर वह होता एक देशमें, एक कालमें, एक प्रकार।
अन्तर्दृष्टि न रहती, होती वृत्ति सर्वथा बाह्याकार॥

किंतु परम उत्कृष्ट नित्य सुख देता प्रियका विषम वियोग।
दिग्-दिगन्तमें मिलता उनका निशिदिन मधु-दर्शन संयोग॥

देश-कालका कभी न रहता, कुछ भी, कहीं तनिक व्यवधान।
प्रति पदार्थमें मिलते प्रियतम प्रतिपल करते सुखका दान॥

नित्य स्पर्शसे पुलकित रहता रोम-रोम, खिलते सब अङ्ग।
प्रिय-वियोग इससे अति उत्तम, खिलते जहाँ नित नये रङ्ग॥

× × ×

संसारके भोगोंमें जो सुखकी आस्था है, यही मनुष्यको संसारके भोगोंमें निरन्तर लगाये रखती है। सुख कभी मिलता नहीं, भ्रम होता है। एक बार नशेमें जैसे आदमी अपनेको सुखी मानता है, वैसे ही भोग-मदमें पागल मनुष्य भी सुखकी मिथ्या प्रतीति करता है और परिणाममें उसे मिलती है—घोर निराशा और महान् दुःखकी स्थिति।

जहाँसे दुःख ही पैदा होते हैं, वहाँ सुख कहाँसे आयेगा? भगवान्‌ने कहा है—"दुःखयोनय एव ते—भोग सभी 'दुःख-योनि' हैं—दुःखोंकी उत्पत्तिके स्थान हैं।" अतः मनुष्यको चाहिये—जीवनको भोग-सम्पर्कसे सर्वथा हटाकर, प्रति-क्षण, प्रत्येक चेष्टामें उसे प्रभुके सम्पर्कमें रखे। इसीका नाम साधना है। गोपियोंका रोम-रोम तथा उनके मनका शुद्ध-से-शुद्ध स्थान सदा-सर्वदा श्रीकृष्णसे, केवल श्रीकृष्णसे

ही भरा रहता था । 'तदर्पिताखिलाचारिता'—एकमात्र भगवान्‌का स्मरण ही उनका जीवन था; जगत् तथा जगत्‌के भोग उनके लिये थे ही नहीं ।

× × ×

भगवान् स्वीकार करनेमें यह देखते ही नहीं कि—'यह कौन है, कैसा है ? नीच है या उच्च ?' वे तो केवल वर्तमान चाहको देखते हैं और जिसे एक बार स्वीकार कर लेते हैं, उसको सदाके लिये अपना लेते हैं एवं स्वयं सदाके लिये उसके बन जाते हैं । अतएव यह कभी सोचना ही नहीं चाहिये कि 'मुझ एक नीचको भगवान् क्यों नहीं स्वीकार कर लेते ।' इससे तो यह सिद्ध होता है कि भगवान्‌का तुम्हें स्वीकार करना अभी बाकी है । तुम ऐसा मानकर क्यों दुःखी होते हो ? तुम तो उसी दिन स्वीकृत हो चुके, जिस दिन तुम अपने मनसे उनके बन गये । तुम्हें इस प्रकारके संदेहकी बात तनिक भी न मनमें रखनी चाहिये, न जबानपर लानी चाहिये और न ऐसी कल्पना ही करनी चाहिये ।

उनके स्वीकार कर लेनेपर दोष हृदयमें रहते ही नहीं, कहीं किसीको दोष दीखते हैं तो वे दोष भी भगवान् ही बने हुए हैं, फिर जो स्वीकृत हो चुका है, वह तो सर्वथा उनकी वस्तु हो गया है; वे चाहे उसे दोषोंसे पूर्ण रखें या गुणोंसे भरपूर कर दें । उसे दोष-गुणसे क्या लेना-देना है ।

वह तो उनका हो चुका है, वे उसके हो चुके हैं। इससे दोष-गुणका कोई प्रश्न ही नहीं रह जाता। अतएव तुमको नित्य निश्चिन्त मनसे अपनेको उनकी वस्तु, एकमात्र उन्हींकी वस्तु मानना चाहिये।

× × ×

संसार तो दुःखालय है, यहाँ सदा-सर्वदा दुःख-ही-दुःख है। इस दुःखका एकान्त नाश तभी हो सकता है, जब संसारमें भगवान् भरे दीखने लगें। प्रत्येक द्वन्द्वमें सर्वत्र, सदा अपने प्रभुके ही मङ्गल-दर्शन हों, फिर वियोग, विनाश, मृत्युमे भी भगवान्के दर्शनसे प्रसन्नता ही होगी।

संसारका स्वरूप सामने है। इसमें निरन्तर मृत्युका प्रवाह बह रहा है। कुछ भी स्थिर तथा नित्य नहीं है। इन्द्रियोंके भोग तथा इन्द्रियाँ भी विनाशी हैं। भोगका मोह छूटना परमावश्यक है। निश्चय ही भोग दुःखयोनि हैं। इनमें कभी कहीं भी सुख-शान्ति नहीं है। मनुष्य भ्रमवश ही भोगोंमें सुखकी कल्पना करके नये-नये दुःखोंको तथा दुःखोंके कारणोंको उत्पन्न करता रहता है।

जीवनका यह भोगमुखी प्रवाह एकमात्र भगवान्की ओर जीवनकी गति होनेपर ही रुक सकता है। अतएव मन, वाणी, शरीर—सभीको निरन्तर भगवान्में लगाये रखनेकी ही तीव्रतम इच्छा, अनन्य आवश्यकता एवं सावधानीके साथ चेष्टा होनी चाहिये। भगवान्की अहैतुकी कृपाकी ओर देखकर सदा निश्चिन्तरूपसे विश्वास करना

चाहिये कि 'मेरी गति भगवान्‌की कृपासे भगवान्‌की ओर हो गयी है। भगवान्‌ने मुझे स्वीकार कर लिया है। एक मात्र भगवान् ही मेरे अपने हैं।'

भगवान् जिसको एक बार अपना लेते हैं, उसका परम कल्याण तो हो ही चुका, चाहे वह आज सामने दिखायी न दे; एक दिन उसकी कामना-वासनाको भी भगवान् नष्ट अवश्य कर देंगे। तुम्हारा सब-कुछ उनके ही समर्पित हो चुका है, अतः तुमको भी यह सदा मानना चाहिये। समर्पणके पश्चात् तुम्हें हर परिस्थितिमें प्रसन्न रहना चाहिये; तुम्हें दुःखी होनेका अब अधिकार ही नहीं रहा।

× × ×

जिसका जीवन-पुष्प प्रभुके चरणोंमें चढ़ चुका है, उसका अपना जीवन रहा ही नहीं, जो वह अपने लिये सोचे-विचारे। वह तो प्रभुका ही हो गया; प्रभुके हृदयका हार-सुमन बन गया; उनके मस्तककी मणि बन गया; उनका शोभा-शृङ्गार बन गया। वह धन्य हो गया। ऐसे प्रभु-चरणार्पित-पुष्पकी महत्ता कौन बता सकता है?

× × ×

औरों के पिया परदेस बसत हैं लिख-लिख भेजें पाती।
मेरे पिया मेरे हिय में बसत हैं मिली रहूँ दिन-राती ॥ (

—इस प्रकार प्रभुकी मूर्तिको दिन-रात—जागते-सोते सब समय मनमें सुखपूर्वक सुविधापूर्वक बसाये रहे

चाहिये। हमारा मन इतना उनके अनुकूल बन जाय कि उनको वहाँ बसे रहनेमें कभी किसी प्रकारकी अड़चन आये ही नहीं, वरं सुख-सुविधा बनी रहे। मनमें न गंदगी रहे, न कोई दूसरा वहाँ रहे, न भीड़-भाड़ रहे, न हल्ला-गुल्ला रहे। गंदगी और हल्ला-गुल्ला तो वे आप ही नहीं रहने देंगे। एक बार वे बस जायँ, फिर तो वे अपना पूरा अधिकार जमा लेंगे। पर अपनी ओरसे ऐसा प्रयत्न होना चाहिये कि वे स्वतन्त्रताके साथ मनमें सदा सुख-सुविधापूर्वक पूरे अधिकारसे तथा पूरी मौजसे मनमाने रूपमें निस्संकोच रह सकें। खाते-पीते, नहाते-धोते, सोते-जागते, बैठते-लेटते—सभी समय उनके पास रहने, साथ रहनेका अनुभव होता रहे। बस, यही साधन हो और यही साध्य हो। हम उनके सिवा किसीको न जानें, कोई भी हमारे मनमें न आये और वे हमारे सिवा किसीको न जानें, कोई भी उनके मनमें न आये। वे तो ऐसा करनेको तैयार ही हैं, तैयारी तो हमहीको करनी है।

× × ×

हम आशा रखते हैं, इसीसे दुःखी होते हैं। हमको पल-पलपर और पद-पदपर भगवान्‌की कृपाका अनुभव करते रहना चाहिये तथा मनमें अत्यन्त प्रसन्न रहना चाहिये। यह विश्वास करना चाहिये कि 'भगवान्‌की मुझपर अनन्त कृपा है और मेरी अपनी पात्रतासे कहीं विशेष स्वाभाविक दयालु प्रभुने मुझपर कृपा की है। उन्होंने ही कृपा करके

अपनी स्मृति दी है; वे ही कृपा करके अपने तथा अपनी पवित्र दिव्य लीलाके दर्शन करायेंगे। वे मेरे लिये जब, जो विधान करते हैं, वैसा ही, वही मङ्गलमय है।'—इस प्रकार अपनेको सदा उनकी कृपापर छोड़कर उन्हींपर निर्भर करके उनके शरणापन्न हो रहना चाहिये। हम दीन और कर ही क्या सकते हैं? दीनबन्धुकी कृपा ही हमारा सारा बल और अवलम्बन है।

× × ×

आराम तो शरीरकी आसक्ति अपने-आप करा देती है। मनुष्यको तो जहाँतक बने तथा उसमें शक्ति रहे, भगवान्‌की सेवाका कार्य निरन्तर करते रहना चाहिये। शरीरको घरवालोंकी राजीपर छोड़ देना चाहिये। मनको तो मनुष्य चाहे जहाँ रख सकता है। तुम मनमें चिन्ता मत किया करो। वे हमारे लिये जब, जो, जैसी व्यवस्था करें, उसीमें मङ्गल है। संसारकी तो सभी चीजें अनित्य और परिवर्तनशील हैं। प्रत्येक परिवर्तनमें भगवान्‌की लीलाका अनुभव करना चाहिये। संसारमें संयोग-वियोग होते ही रहते हैं। मनको जहाँतक बने प्रभुके चरणोंमें लगाये रखना चाहिये। भगवान्‌की मङ्गलमयी कृपा निरन्तर हमपर बरस रही है। बस, निरन्तर सुखी रहा करो। चित्तमें प्रसन्नताका पोषण किया करो। उदासी, विषाद, चिन्ता, शोक—भगवद्विश्वासीके मनमें रहने ही नहीं चाहिये।

× × ×

प्रभु हमारे मनके भीतरकी बातको, यथार्थ स्थितिको प्रत्यक्ष जानते हैं, देखते हैं; उनसे कुछ भी छिपा नहीं है। सब-कुछ देख-जानकर वे हमारे प्रेमास्पद परम सुहृद् प्रभु हमारे लिये जो कुछ विधान करते हैं, वही हमारे लिये परम मङ्गलमय है और उसे सदा-सर्वदा परम प्रफुल्लित चित्तसे स्वीकार करना चाहिये। इतनेपर भी प्रभुके लिये विरह होना, प्राणोंका छटपटाना दोष नहीं है, अपितु परम वाञ्छनीय गुण है। प्रभु-विरह प्रभुकी नित्य स्मृति करानेवाला होनेके कारण अत्यन्त ही आदरकी वस्तु है। इसलिये कुछ प्रेमीजन तो मिलनकी अपेक्षा भी विरहको अधिक आदर देते हैं और उसके सदा बने रहनेमें ही सुखका अनुभव करते हैं। कहीं-कहीं मिलन-विरह दोनोंका मिलन भी हो जाता है। प्रेमकी बड़ी अटपटी स्थिति है।

× × ×

जहाँ अहैतुक सहज प्रभु-प्रेम होता है, वहाँ प्रभु किसी भी परिस्थितिमें रखें, उनका संयोग रहे या वियोग, किसी भी योनिमें, कहीं भी हम जायँ, प्रभुका मनसे वियोग कभी हो ही नहीं सकता। प्रेमकी धाराके रुकने तथा कम होनेकी तो कभी कोई कल्पना ही नहीं। जहाँ नीच स्वार्थ होता है और केवल निज-सुखकी इच्छा होती है, वहीं प्रेमके कम होनेकी कल्पना होती है। दिव्य अनन्य प्रेममें दूसरा कोई रहता ही नहीं। फिर दूसरेकी ओर ताकने या समय

मिलनेका भी कोई प्रश्न ही नहीं है। इसीलिये भगवत्प्रे पुरुष नित्य-निरन्तर प्रभुके प्रेममें निमग्न हुए आनन्द-सुध रसका पान किया करते हैं; सदा मस्त रहते हैं।

× × ×

मनको सदा-सर्वदा विषय-चिन्तनसे हटाकर भगवच्चि न्तनमें लगाये रखना चाहिये। विशुद्ध भगवच्चिन्तन होनेप विषयोंका चिन्तन अपने-आप छूट जाता है। परंतु कहीं कहीं भ्रमवश भगवच्चिन्तनके नामपर विषय-चिन्तन होत रहता है, हमें पता भी नहीं चलता कि विषय-चिन्तन हो रहा है और ज्यों-ज्यों विषय-चिन्तन होता रहता है, त्यों त्यों चित्त विषय-सागरमें डूबता जाता है और उसीमें मिथ्यानन्दका बोध करने लगता है। भागवतमें भगवान् कहा है—

विषयान् ध्यायतश्चित्तं विषयेषु विषज्जते।
मामनुस्मरतश्चित्तं मय्येव प्रविलीयते॥

(११।१४।२७)

'बार-बार विषयोंका चिन्तन करनेसे चित्त विषयोंमें निमग्न हो जाता है और मेरा चिन्तन होनेसे मुझमें ही तन्मय हो जाता है।' अतएव सदा-सर्वदा सावधानीके साथ विषय-गन्धसे रहित विशुद्ध भगवच्चिन्तन ही करना चाहिये। 'जिनका चित्त विषयोंमें आविष्ट होता है, उनके लि

श्रीकृष्णमें चित्तका आवेश प्राप्त करना उतना ही अधिक दूर हो जाता है'—

'विषयाविष्टचित्तानां कृष्णावेशः सुदूरतः ।'

भगवान्‌के चिन्तनमें एक मधुर आनन्दकी अनुभूति होनी चाहिये, फिर वह छूटता नहीं और दूसरे चिन्तनोंको नष्ट कर देता है।

× × ×

निरन्तर निर्मल प्रेमभावसे भगवान्‌का मधुर चिन्तन करते रहें। उनका—केवल उन्हींका चिन्तन हमारे जीवनका स्वभाव बन जाय, हमारे जीवनकी आत्मा बन जाय—इस बातका पूर्ण मनोरथ तथा पूर्ण प्रयत्न रखना चाहिये। जगत्‌के किसी भी द्वन्द्वका—मान-अपमान, हानि-लाभ, दुःख-सुख, संयोग-वियोगका हमारे मनपर कोई असर नहीं होना चाहिये। बस, हमारे हृदयमें, प्रत्येक स्तरमें, हर समय केवल हमारे परम प्रेमास्पद प्रभु ही लीला—मधुर लीला करते रहें; अपना मानकर निःसंकोच लीला करते रहें।

× × ×

भगवान्‌का यह स्वभाव है कि जो उनका हो जाता है, उसे सदाके लिये अपनाकर वे स्वयं उसके बन जाते हैं।

भूलना, त्यागना, हृदयमें न बसना, न बसाना—यह सब तब रहता ही नहीं।

भगवान्‌ने दुर्वासासे कहा है—'ऐसे प्रेमी भक्त मेरे हृदय होते हैं, मैं उनका हृदय होता हूँ। वे मेरे सिवा किसीको नहीं जानते, मैं उनके सिवा और किसीको नहीं जानता।' जब वे स्वयं ही हृदय हो जाते हैं और भक्त-प्रेमीको अपना हृदय बना लेते हैं, तब त्यागकी तो कल्पना ही नहीं। वे उस प्रेमीके अधीन हो जाते हैं। उसके मनमें अपने मनका प्रवेश कराकर एक-मन, एकप्राण हो जाते हैं। यही परम आदर्श है। भगवान् इसमें कोई विलक्षण बात नहीं करते। उनका स्वभाव हो ऐसा विलक्षण है। वे जिसको अपने हृदयमें बसा लेते हैं, वह चाहनेपर भी फिर उनसे अलग नहीं हो सकता; उसे तो वहाँ सदाके लिये बँधे रहना पड़ता है। इस प्रकार प्रेमी और प्रेमास्पद भगवान् एक-दूसरेके द्वारा बाँधे जाते हैं और एक दूसरेको बाँध लेते हैं। यह बन्धन बड़ा ही अनोखा—मधुर होता है। अतएव इससे मुक्ति न भगवान् चाहते हैं, न प्रेमी चाहता है।

[११]

कर्मके प्रत्येक फलमें भगवान्की दयाको देखना चाहिये। काम होनेपर यह विचार करना चाहिये कि—'यह मेरे पुरुषार्थका फल नहीं है और मुझे इसमें कोई आसक्ति या फल-कामना भी नहीं है। भगवान्ने इस काममें दया करके ही मुझे नियुक्त कर दिया है। अतएव भगवान्के आज्ञानुसार भगवान्की प्रीतिके लिये उत्साह, सावधानी और धैर्यपूर्वक, सत्य और न्यायको साथ रखते हुए मैं यह सेवा करूँ।' काम न होनेपर—'न होनेमें ही कल्याण है, इसीलिये भगवान्ने नहीं होने दिया'—यह विश्वास करके आनन्दमग्न रहना चाहिये। 'होने' और 'न होने'—दोनोंमें ही हर्ष-विषादका विकार न होकर, दोनोंमें ही भगवान्की कृपाका अनुभव करना चाहिये। 'न होनेमें' जैसे दुःखका विकार होता है, वैसे ही 'होनेमें' सुखका विकार होता है। विकार होते ही भगवान्की विस्मृति हो जाती है। 'न होनेमें' तो भगवान्का स्मरण होता भी है, परंतु 'होनेमें' भगवान्का स्मरण छूटना बहुत सहज है। अतएव किसी भी हालतमें मनमें विकार न होकर सदा प्रभुकी स्मृति बनी रहे और प्रभुका स्मरण करते हुए ही प्रभुके सौंपे हुए

कार्यको प्रभुके प्रीत्यर्थ प्रसन्नतापूर्वक करें—ऐसी ही भक्तकी धारणा होनी चाहिये।

× × ×

सबके लिये यह सबसे अधिक विचारणीय प्रश्न है कि मनुष्य-जीवनको प्राप्त करनेकी अनन्त युगोंकी तैयारियाँ कहीं विफल न हो जायँ। आया हुआ मेघ, बरसा हुआ जल कहीं किसानकी गफलतसे खेतकी तैयारी बिना व्यर्थ न चला जाय। इस बातका प्रत्येक मनुष्यको ध्यान रखना चाहिये कि कहीं अनवरत बरसनेवाली प्रभु-कृपासे हम अपनी भूलके कारण वञ्चित न रह जायँ।

× × ×

निर्भय भक्तको अपनेको सर्वथा भगवान्‌पर छोड़कर निश्चिन्त हो रहना चाहिये। वे जब, जहाँ, जिस स्थितिमें, जबतक रखें, उनकी मर्जी है। भक्तका काम तो, बस, सतत प्रभुकी कृपाका अनुभव करना और अविच्छिन्नरूपसे प्रेम-पूर्वक प्राणक्रियाकी भाँति स्वाभाविक ही उनका चिन्तन करना है।

× × ×

आप क्या हैं, किस इच्छावाले हैं, आपका क्या होगा, क्या होना चाहिये, आपको किस चीजकी आवश्यकता है, वह कब मिलेगी—इन सारे प्रपञ्चोंको आप भूल जाइये। आप तो बस, केवल उनका चिन्तन ही करते रहिये—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

'योग-क्षम'का निर्णय और 'योग-क्षेम'का वहन फिर वे स्वयं ही करेंगे; आप तो निश्चिन्त हो जाइये। इस बातका भी भूल जाइये कि 'योग-क्षेम कुछ होना चाहिये और उसक. निर्णय तथा वहन—मेरे अनन्य चिन्तन करनेपर भगवान् ही करेंगे।' आपका तो सारा योग-क्षेम, बस, एक-मात्र भगवान्‌के चिन्तनमें ही पर्यवसित होकर भगवच्चिन्त-नरूप ही हो जाना चाहिये। भगवत्कृपासे आपके एकान्त दृढ़ इच्छा करनेपर ऐसा होना कुछ बड़ी बात नहीं है।

भगवान्‌की लीला बड़ी मधुर है; उसमें बस, यन्त्र बने रहिये।

× × ×

भजनके लिये बीच-बीचमें एकान्त-सेवनकी बड़ी आव-श्यकता है। एकान्तके बिना विरोधी वृत्तियोंका नाश सहजमें नहीं होता। सच्चा एकान्त तो वह है, जिसमें हमारे मनमें एकमात्र भगवान् ही रह जाते हैं; दूसरी सारी शुभाशुभ वृत्तियाँ विलुप्त हो जाती हैं। परंतु ऐसा एकान्त सहज ही नहीं मिलता। इस एकान्तकी प्राप्तिके लिये भी बाह्य एकान्तकी आवश्यकता है। जहाँतक बन पड़े, बाहरी बातोंसे सर्वथा मनको हटाकर, मनको जगसेत्

खाली करके उसमें एकमात्र भगवान्‌को स्थिरभावसे पधरानेकी चेष्टा करनी चाहिये।

× × ×

भगवान् केवल वाणी द्वारा कही बातको ही नहीं सुनते, हम मनमें जो कुछ कहते हैं, उसे भी वे सुन लेते हैं। हम मनमें जो सोचते हैं, जिसे हम छिपाना भी चाहते हैं, उसे भी वे देख लेते हैं एवं हमारी स्नेहिल भावधारासे बड़े ही प्रसन्न होते हैं। हमारी सुननेवाला और कोई भी नहीं हैं'—यह तो उनकी विशेष कृपा है। हम किसी औरको सुनानेकी कल्पना भी कैसे कर सकते हैं? किसी औरसे हमारा सम्बन्ध ही क्या है? हम तो एकमात्र उन्हींको अपना मानते रहें; अपनेको एकमात्र उन्हींकी वस्तु मानते रहें। और है भी वस्तुतः ऐसा ही। फिर दूसरा कोई हमारी बातका सुननेवाला क्यों बच रहना चाहिये और क्यों हमारे मनमें दूसरेको सुनानेकी कल्पना भी होनी चाहिये? हम सदा-सर्वदा प्रसन्न रहें, उनके समीप रहें, उनको समीप रखें। जीवन-मरणमें तथा मरणोत्तर भी उनका नित्य सङ्ग है—इसमें कभी जरा भी न संदेह करें और न कभी इससे अन्यथा सोचें।

× × ×

भगवान् अपने प्रेमीको अपने हृदयमें बसाते ही नहीं हैं, उसको अपना हृदय ही बना लेते हैं, प्रेमी उनका हो जाता

है। अतएव वह सदा अपनेमें उनको और उनमें अपनेको देखता रहे। जगत्को वह देखता ही क्यों है? फिर भी जगत् दीखता है तो जगत् उनका खेल है। वे ही जगत् बनकर प्रेमीके सामने आते हैं। वे किसी भी रूपमें आवें—उन्हें पहचानता रहे और उनकी विचित्र भाव-भङ्गिमा देख-देखकर हँसता रहे; उदास कभी न हो।

× × ×

प्रेमीकी उदासी भगवान्को बहुत अधिक उदास बना देती है। प्रेमी उनको इससे सदा बचाता रहे—स्वयं सदा प्रसन्न रहकर, प्रफुल्लित रहकर। चिन्ता, शोक, भय, विषाद उसके समीप कभी आ ही न सकें। प्रेमीके पास तो बस, एकमात्र वे प्रियतम प्रभु ही रहें और रहें उनके दैवी गुण-समूह। चिन्ता आदिका वेश धरकर कभी प्रभु खेल करें तो उनको वह पहचान लिया करे। फिर वह आनन्द-दायी नाटकमात्र रह जायगा--चाहे नाट्य चिन्ता-शोकका हो। अतएव प्रेमी निर्भय, निश्चिन्त रहे; प्रसन्न रहे; निरन्तर प्रसन्नता फैलाता रहे।

× × ×

जहाँतक बने, प्रभुका चिन्तन प्रेमपूर्वक करते रहें। उनके विरदपर विश्वास रखें—वे सदा अपने स्वभावकी ओर ही देखते हैं, हमारी ओर नहीं। हमारी तो चाह और विश्वासभर होना चाहिये, हृदयकी सारी कामना-वासना

वे आप ही नष्ट कर देंगे। उनकी वस्तु बन जाना चाहिये, फिर वे आप ही सँभालेंगे, सँभाल ही रहे हैं। हम तो बस, यही निश्चय रखें और इसी निश्चयको निरन्तर सुदृढ़ करते रहें—'मैं भगवान्‌का हूँ, भगवान् मेरे हैं। मैं कैसा भी हूँ, उनका ही हूँ। वे कितने ही महान् हों, मेरे ही हैं, निश्चित मेरे हैं।'

× × ×

भगवान्‌को रिझानेके लिये हमारी अयोग्यता-निर्बलता, दीनता-हीनता ही प्रधान साधन हैं। हम बस, एकमात्र उनको अपना मानते रहें तथा एकमात्र उनके अपने बने रहें; फिर वे आप ही जैसे चाहेंगे, हमें गढ़ लेंगे। वे तो गढ़ रहे ही हैं, गढ़ भी चुके हैं। हम उनपर विश्वास करके आज ही उनके आश्रयके बलपर अपनी दीनता-हीनतापर विजय प्राप्त कर सकते हैं। उनका बल हमारे साथ है और सदा हमारे संरक्षणके लिये प्रस्तुत है। हम मनसे न दूसरेके रहें, न कोई दूसरा हमारा रहे। समस्त प्राणि-पदार्थ-परिस्थितिके अधिकारसे, अधीनतासे हम अपने मनको मुक्त कर लें। हम केवल उनके और वे केवल हमारे रहें। ऐसा ही है—यही सत्य है; हम इसपर विश्वास करें, इसे अनुभव करें।

× × ×

संसारमें जैसा होता आ रहा है, वही होगा; इसमें नयी बात क्या है ? यहाँका स्वरूप ही ऐसा है। अपनी तरफसे किसीके साथ भी, जरा भी बुरा बर्ताव नहीं होना चाहिये। सभीमें भगवान् हैं—इस नाते सबकी पूजा यथायोग्य करनी चाहिये; अपनी ओरसे त्याग-भावना रखनी चाहिये।

× × ×

देखो ! गङ्गाकी धारा एक बार जो बही सो अनवरत अपनी दिशामें बह ही रही है; कभी भी उसमें विराम नहीं होता। वह यह प्रतीक्षा नहीं करती है कि कोई उसे बहनेके लिये कहे या दिशाका निर्देश करे। इसी प्रकार तुमपर जो श्यामसुन्दरकी प्रेमामृतधारा बहने लगी है, वह अनवरत बहती ही रहेगी; उसमें न विराम हुआ है न होगा। तुम कैसे हो,—क्या हो—इसकी बाट, वह नहीं, देखेगी, वरं समस्त बाधा-विघ्नोंको चूर-चूर करती हुई वह तुम्हारी ओर बहती ही रहेगी और तुम्हें आत्मसात् कर ही लेगी। वह स्वयं ही बहकर, स्वतः ही तुम्हें अपने अंदर मिला लेनेयोग्य बना रही है; बना ही लेगी। जब वह एक बार तुम्हारी ओर बह चली है, तब तुम उसमें आत्मसात् हो ही गये—यही समझो; समझो ही नहीं, वास्तवमें ऐसा ही है।

× × ×

संसारसे आशा रखना ही दुःखका हेतु है। न कभी आशा पूर्ण हुई, न हो सकती है; अतः यहाँसे निराश होकर नित्य-निरन्तर भगवान्में लगे रहनेसे ही दुःखका नाश तथा सुखकी प्राप्ति होती है। जगत्में विषयोंसे न कभी कोई सुखी हुआ है, न हो सकता है। जैसे ज्वालामयी अग्निमें शीतलता नहीं, वैसे ही 'दुःखालय' संसारमें सुख नहीं। संसारके प्रवाहमें न बहकर भगवत्प्रेमके सुधा-प्रवाहमें बहना चाहिये—

तुम सुखी रहो, संतृप्त रहो, संतुष्ट रहो, नित निर्विकार।
उमडे उरमें निर्मल पावन रस-सुधा-सिंधु अविरत अपार॥
तुम डूबे रहो नित्य उसमें, बन स्वयं रसामृत-सुधागार।
देखो प्रभुका ही नित नूतन अति मधुर रूप सौन्दर्य-सार॥
रह जाय न कुछ भी अन्य भाव प्राणी-पदार्थ जगके असार।
घुल-मिल जाओ प्रभुमें अनन्त कर देश-कालकी अवधि पार॥

संसारमें तो संताप ही भरा है, अतएव संसारसे सुखकी आशा रखनेवाले सदा संताप ही भोगते हैं—चाहे वे किसी भी ऊँची या नीची सांसारिक स्थितिमें हों।

× × ×

अपनेमें दोष दिखायी देना भगवान्की कृपासे ही हुआ करता है। तुमपर भगवान्की बड़ी कृपा है, इसीसे सांसारिक भोगोंके लिये तुम दुःखी नहीं होते; और अपनेमें दोष एवं प्रभुमें गुण देखकर प्रभुके प्रति परम प्रेम तथा विश्वास

बढ़ानेका प्रयत्न करते हो—यह परम सौभाग्य है। तुम्हारा प्रेम सचमुच अनोखा ही है। भगवान्‌को सब पता है; वे जिसमें प्रेम देखते हैं, वस्तुतः उसीमें प्रेम है। तुम भगवान्‌के हृदय, उनके शील-स्वभाव तथा उनकी प्रीतिकी ओर देखकर सदा परम सुखी रहो; कभी भी निराश मत होओ। बस, इतना ही कि तुम भगवान्‌को सदा अपना समझो। तुम भगवान्‌को जानो, भगवान् तुमको जानें; तुम भगवान्‌को देखते रहो, भगवान् तुमको देखते रहें। तुम पूरे उनके, वे पूरे तुम्हारे; तुम उनमें, वे तुममें। भगवान्‌के वचन हैं—

(१) 'मयि ते तेषु चाप्यहम्—वे मेरेमें रहते हैं, मैं उनमें रहता हूँ।'

(२) 'मदन्यत्ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि।—वे मेरे सिवा किसीको नहीं जानते, मैं उनके सिवा किसीको भी नहीं जानता।'

(३) 'हृदयं मह्य ……… हृदयं त्वहम्।—वे मेरे हृदय हैं, मैं उनका हृदय हूँ।'

मनमें सदा निश्चय और प्रत्यक्ष अनुभव करते रहो कि भगवान् कभी, किसी हालतमें तुमसे अलग नहीं होते। दूर जानेकी तो कल्पना ही नहीं। सदा उन्हें अपने पास, अपने साथ देख-देखकर प्रमुदित होते रहो—

पलभर नहीं छोड़ते प्यारे, पलभर नहीं छोड़ते साथ।
सदा-सदा समीप रहते वे, घुले-मिले प्राणोंमें नाथ॥
देख-देखकर मैं उनका वह पल-पल बढ़ता नूतन रूप।
पाती नित्य-निरन्तर पावन मैं प्रमोद अति मधुर अनूप॥

× × ×

वास्तवमें संसार है ही नहीं; लीलासे भगवान् ही जगत्‌के रूपमें भासते हैं। चाहे हमें वे जगत्‌के रूपमें दीखें या न दीखें, हैं वे ही। संसार तथा संसारके जन्म-मरण, सुख-दुःख, लाभ-हानि, संयोग-वियोग, मेरा-तेरा आदि द्वन्द्वोंमें सत्ताबुद्धि ही राग-द्वेष उत्पन्न करती है तथा दुःख देती रहती है। जगत् दिखायी भी दे, परंतु उसमें सत्ता-बुद्धि न रहकर लीलाबुद्धि हो जाय। उसके अंदर लीला करते भगवान् दिखायी दें; केवल उन्हींकी सत्ताका बोध हो तो फिर राग-द्वेष कहाँ रहें, अपना-पराया कहाँ रहे? यही वस्तु सत्य है; यह सत्य ही श्रीकृष्ण हैं। इन श्रीकृष्णमें नित्य-निरन्तर रमण करते रहना—यही साधन होना चाहिये और यही साध्य। तुम तो सदा प्रसन्न ही रहो—भगवान् श्रीकृष्ण जब तुम्हारे हैं—तुम जब उनके हो चुके हो, तब अप्रसन्नताकी कल्पना ही तुम्हारे लिये नहीं रही। बाहरकी तरङ्गमें कभी कोई मलिनता दीखती है तो वह बाहरके संसर्गका ही परिणाम है; वास्तवमें उस परम निर्मल रस-सुधा-सागरमें तो कहीं किसी मलिनताकी कल्पना ही नहीं है।

तुमने पूछा है—'मेरे लायक सेवा लिखिये'। सो तुम्हारे लायक एक ही सेवा है—तुम नित्य-निरन्तर परम प्रसन्न रस-सागर बने हुए अपने अंदर रसमय रसिकशेखर भगवान् श्रीश्यामसुन्दरको अवगाहन कराते रहो। श्रीश्यामसुन्दरसे तुममें कोई भेद न था, न है, न होगा; पर लीलाके लिये जो भेद है, उसमें भी सदा अभेदका तथा जो पृथक्ता है, उसमें भी सदा एकताका अनुभव करते रहो। उनके सिवा और कुछ रहे ही नहीं।

× × ×

तुम कहते हो—'मेरी स्थिति ज्यों-की-त्यों है, कुछ कम भले हो हो, बढ़नेके लिये स्थान नहीं है।' सो ऐसी बात नहीं। नयी-नयी प्रवृत्तिमें नयी उमङ्ग रहती है; स्वाभाविक होनेपर उसमें सहज भाव आ जाता है; पर वही तो जीवन है। तुम अपनेको भगवान्की ही वस्तु पूर्णरूपेण मानते रहो; मानते क्या रहो—हो ही। फिर वे धोना चाहेंगे, धोयेंगे; बिगाड़ना चाहेंगे, बिगाड़ेंगे। पर वह धोना और बिगाड़ना होगा, उनका अपना ही, अपनेमें ही तथा अपने लिये ही। तुम चिन्ता करते हो, यह अवश्य निकाल देने लायक दोष है। तुम तो बस, उन्हींकी चिन्ता करो—अपनी नहीं।

[१२]

भगवत्प्रेमकी अग्नि हृदयके सारे कूड़े-कचरेको पूरी तरह जलाकर उसमें अगाध मधुरतम रस भर देगी, इसमें जरा भी संदेह मत करो। वह काम भगवान्‌की ओरसे तो हो ही रहा है, तुम भी अपनी इच्छा-शक्तिकी उत्कट चाहका जोर लगाते रहो। भगवद्भाव भर जानेपर जगत्‌की आसक्ति-ममता-कामना सब नष्ट हो जायँगी, उनकी छाया भी नहीं रहेगी। तुम्हारे लिये ऐसी व्यवस्था अवश्य होगी। तुम कभी निराश, उदास, विषादयुक्त मत होओ। भगवान्‌की कृपापर विश्वास रखो। संसारका संयोग-वियोग, लाभ-हानि, जीवन-मरण आदि जैसा होना है, होता रहे; जगत् द्वन्द्वात्मक है ही। तुमको तो द्वन्द्वरहित होकर केवल भगवन्मय रहना है; तुम उसीमें रहो। आगे-पीछे, बाहर-भीतर, जाग्रत्-स्वप्न—सभी जगह, सभी समय, सभी स्थितियोंमें केवल श्रीश्यामसुन्दर हैं; और कुछ है ही नहीं, होगा ही नहीं।

× × ×

तुम बीमारीमें भगवान्‌का एकान्त स्मरण करते रहना। बीमारीमें एकान्त मिलता है, अतएव प्रियतम प्रभुकी समीपताका विशेष अनुभव होना चाहिये। वे तो बीमारीमें

और भी पास रहते हैं। यदि तुम अनुभव करो तो पता लगेगा, मानो वे तुम्हारा सिर दबा रहे हैं, बदनपर हाथ फिरा रहे हैं; तुम्हें बीमारीमें भी हँसा रहे हैं। उनके-जैसे विचित्र प्रेमी वे ही हैं। किसी भी अवस्थामें वे न कभी अलग होते हैं, न घृणा करते हैं, न अभिमान करते हैं; वरं अपना सारा बड़प्पन भूलकर सच्चे मित्रकी भाँति सहायता करनेमें और सेवककी भाँति अपने जनकी सेवामें लगे रहते हैं। विचित्र स्वभाव है उनका! हम सुखमें उन्हें भूल जाते हैं, इसीसे वे दुःखके वेशमें आकर अपनी स्मृति और अनुभूति हमें प्रदान करते हैं। धन्य है उनका प्रेम! तुम अनुभव करो—

जिसने उनको चाहा, उसकी करते हैं प्रियतम खुद चाह।
जो आहें भरता है, उसके लिये स्वयं वे भरते आह॥
जिसको क्षण-भरको भी प्रिय-वियोगमें कभी न पड़ता चैन।
उसके लिये बहाते रहते स्नेह-सलिल नित प्रियतम-नैन॥
रखते हृदय बसाये उसको लोभीके धनकी ज्यों श्याम।
उसे देखनेको ललचाते, उनके लोचन नित्य ललाम॥
रहते उसके पास निरन्तर जाकर स्वयं सच्चिदानन्द।
सुख देते, सुख लेते उससे, स्वयं बने अतृप्त सुख-कंद॥

× × ×

संसारमें तो रोना-धोना लगा ही है। अनुकूल बनाना है अपने-आपको। दूसरोंसे अनुकूलताकी आशा तो सदा

दुःखमयी ही हुआ करती है। अपने आत्माकी अनुकूलतामें बाहरकी कोई भी प्रतिकूलता बाधक नहीं होती। बाहरकी प्रतिकूलता है—शरीर और नामके लिये। आत्माकी अनुकूलतामें शरीर और नामकी प्रतिकूलतासे कोई सम्बन्ध नहीं है। तुम अपनेको शरीर एवं नाम ही क्यों समझते हो? तुम तो भगवान्‌के समर्पित होकर भगवान्‌की वस्तु बन चुके हो। फिर तुम शरीर और नामको लेकर क्यों दुःख करते हो? तुम्हें सदा बहुत-बहुत प्रसन्न तथा मौजमें रहना चाहिये। अपनी भीतरी मस्तीमें जरा भी त्रुटि मत आने दिया करो। कुछ भी हो, कैसे भी हो, तुम्हारा असली स्वरूप तो सदा तुम्हारे प्रियतम भगवान्‌के भुज-पाशोंमें बँधा है; नित्य ही उनसे आलिङ्गित है, कभी बिछोह-वियोग होता ही नहीं है। बिछोह मानना ही पागलपन है; इसे छोड़ देना चाहिये। कोई कुछ भी कहे-सुने, उसमें बिगड़ता ही क्या है? निराश होने और रोनेकी कल्पना ही क्यों? निराश तो जगत्‌से होना है। जगत्‌की आशा ही दुःखमयी है। प्रियतम प्रभुसे निराशा कैसी? वे तो हमारे हैं ही, हमारे ही रहेंगे—निश्चय ही, सदा ही, सर्वत्र ही।

× × ×

प्रार्थना और भगवन्नाममें बड़ा बल है। एक नामसे पापोंका अशेष नाश हो सकता है—इसको केवल कल्पना मत मानो। ज्ञानी लोग कहते हैं—'ज्ञान प्राप्त होनेपर

ब्रह्मका स्वरूप जान लेनेपर मुक्ति हो जाती है।' यह बात सर्वथा सत्य भी है; परंतु इसमें प्रमाण क्या है? शास्त्रके वचन ही तो हैं? ऐसे कर्म-बन्धनमें सब लोग फँसे हैं कि बिना इच्छाके भी कर्मोंका फल बाध्य होकर भोगते हैं—उस कर्म-बन्धनकी सारी ग्रन्थियाँ ब्रह्मको जानते ही टूट जाती हैं। अतएव 'ज्ञानमात्रसे बन्धनोंका नाश होना' जैसे सम्भव है, वैसे ही 'भगवान्‌के नाममात्रसे पापोंका नाश' क्यों सम्भव नहीं है? इसमें भी शास्त्र-प्रमाण है। वस्तुतः दोनों ही बातें सत्य हैं। अतएव मनमें विश्वास करके भगवन्नाम-की शरण ग्रहण करनेपर संकटोंका नाश होना कोई बड़ी बात नहीं है।

वैसे क्षणभङ्गुर सांसारिक पदार्थोंकी प्राप्तिके लिये तथा विनाशी संसारके संकटोंके विनाशके लिये अविनाशी सनातन परमात्माको प्राप्ति करानेवाले अविनाशी भगवन्नामका प्रयोग करना बुद्धिमत्ता नहीं है। 'सांसारिक क्षणभङ्गुर पदार्थोंके पानेकी इच्छा' तथा 'प्रारब्धवश अपने कल्याणके लिये परमात्माके विधानसे प्राप्त हुए दुःखोंके विनाशकी कामना'—दोनोंमें ही अज्ञान कारण है। जो वस्तु नाश होनेवाली है, प्रतिक्षण मृत्युको प्राप्त हो रही है, उस सतत मरणशील वस्तुकी चाह कैसी? इसी प्रकार संकटोंके मूलभूत विषयोंके द्वारा संकटोंसे छूटकर सुखी होनेकी वासना कैसी? मलसे मल कभी नहीं धुलता।

इसलिये सांसारिक लाभ-हानिको प्रारब्धपर छोड़कर निश्चिन्त रहना चाहिये।

× × ×

आवश्यकतानुसार विहित कर्म यथाविधि अवश्य करने चाहिये, परंतु कर्म करनेमें उद्देश्य होना चाहिये—फलासक्तिको त्यागकर भगवत्सेवा हो। कर्म-सम्पादन होते ही मनुष्य अपने फर्जको अदा कर चुकता है; फिर चाहे उसका फल कुछ भी हो। जैसे भूकम्प-पीड़ित एक आदमीको हमने मकान बनवा दिया, फिर दूसरे ही दिन पुनः भूकम्प आया--उसका मकान गिर पड़ा। इससे जैसे हमारा कर्म व्यर्थ नहीं गया, उसी प्रकार हम भगवान्‌की सेवा समझकर जो कार्य करते हैं, उससे हमारी पूजा स्वीकार हो गयी। हमें उसके फलसे क्या मतलब? हमने तो पूजाके लिये कर्म किया था, फलके लिये नहीं; और फलमें मनुष्यका अधिकार भी नहीं है। ऐसी अवस्थामें न तो फलकी इच्छा करनी चाहिये और न कर्म या कर्मफलमें आसक्ति ही होनी चाहिये। विचार करके जो मनुष्य मोहको छोड़कर और इस प्रकार फलासक्तिको त्यागकर विहित कर्म करता है, वही यथार्थ बुद्धिमान् है तथा वही बन्धनसे मुक्त होकर वास्तविक परम सुख और शान्ति प्राप्त करता है।

× × ×

तुम 'भगवान्‌का प्रेम' चाहते हो, पर इसे—'भाग छोट अभिलाष बड़'—मानते हो, सो हम लोगोंकी साधन-दशा तो सचमुच ऐसी ही है। अपनी ओर देखनेपर तो निराशा उत्पन्न होना ठीक ही है, परंतु प्रभुकी अहैतुकी कृपासे कुछ भी असम्भव नहीं है। अतः उनके स्वभावकी ओर दृष्टि जानेसे मनमें बल आना भी उचित ही है। उनके शील-स्वभावका परिचय प्राप्त होनेपर तो मनुष्य बरबस उन्हींका हो जाता है। उनके दिव्य मनोहर गुण ही ऐसे हैं, जो निर्ग्रन्थ आत्माराम मुनियोंको भी अहैतुक प्रेम करनेके लिये बाध्य करते हैं—

उमा राम सुभाउ जेहिं जाना। ताहि भजनु तजि भाव न आना॥

करते प्रेम अहैतुक बरबस, ग्रन्थिमुक्त मुनि आत्माराम।
खिंच हरिके उन दिव्य गुणोंसे जो स्वरूपगत नित्य ललाम॥

(श्रीमद्भा० १। ७। १०)

× × ×

परम प्रियतम प्राणप्राण श्रीभगवान्‌के स्वभावकी ओर देखकर सदा समुल्लसित, पूर्ण शान्त और अत्यन्त प्रसन्न रहना चाहिये तथा अपने जीवनको उनके सुखकी सामग्री बना देना चाहिये। अपने लिये कुछ भी चाहिये ही नहीं। चाह हो उनके सुखकी, रुचि हो उनकी रुचिकी, स्पृहा हो उनके संतोषकी, इच्छाएँ सारी जाकर समा जायँ उनकी इच्छामें, सुख हो उनके सुखसे—बस, निरन्तर हमारा जीवन उनको सुखी बनानेमें लगा रहे और उनके मनकी

होते देख-देखकर चित्तमें सदा परमानन्द-सागरकी लहरें उमड़ती रहें। यही उनके दुर्लभ प्रेमकी प्राप्तिका परम श्रेष्ठ उपाय है। यही 'गोपीप्रेम' या 'श्रीराधा-प्रेम' तक पहुँचनेका पथ है। इसमें कुछ भी त्याग नहीं करना पड़ता, केवल प्रभुको 'परम प्रियतम' मानकर 'उनको सुखी देखनेका स्वभाव' बन जाय। इसके सभी अधिकारी हैं; बल्कि वे विशेष अधिकारी हैं, उनके लिये यह मार्ग और भी सुगम है, जो तर्कजालमें न फँसकर सरलता और श्रद्धायुक्त विश्वास रखते हैं। फिर उनको कुमार्गसे बचाते भी हैं भगवान् और अपने प्रेमराज्यके सीधे मार्गपर सुगमतासे ले जाते भी हैं वे ही!

× × ×

सदा सावधान रहना चाहिये—कहीं प्रभुके स्थानपर हम किसी 'असुर'को न अपना लें—पवित्र प्रेमके नामपर 'विषय-वासना'को हृदय-सिंहासनपर न बैठा लें। प्रेमका शरीरसे—पाञ्चभौतिक पिण्डसे सम्बन्ध नहीं होता; वह तो हृदयका अमूल्य धन है। शरीरासक्ति तो पशुता या आसुरीभाव है। प्रेमका साधक तो दैवी-सम्पदाका जीता-जागता आदर्श है। सारी दैवी-सम्पत्तियाँ उसकी सेवामें सदा संलग्न रहकर अपनेको धन्य मानती हैं। भगवान्‌के इस प्रेम-मार्गके पथिक बननेकी इच्छा होते ही पाप भागने लगते हैं। फिर पापोंके रहनेके लिये वहाँ स्थान ही नहीं रह जाता।

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं।
जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं ॥

प्रभु केवल वर्तमानको देखते हैं, पूर्वके इतिहासको वे जानकर भी उसे भुला देते हैं। अतः विश्वास करके हर प्रकारसे मनुष्यको उन्हींके शरणापन्न होना चाहिये।

× × ×

जबतक संसारसे कुछ भी आशा है, तबतक दुःख रहेगा ही। कभी अनुकूल विषय प्राप्त होनेपर इस दुःखका प्रतिद्वन्द्वी—सदा इस दुःखसे डरा हुआ—सुख प्रतीत होता है, फिर वही अभावका दुःख। इस सुख-दुःखसे वस्तुतः कोई लाभ-हानि नहीं होती। अतः इससे हर्ष-शोक नहीं होना चाहिये। प्रभुके प्रेमके पथमें तो संतोषकी बात ही नहीं है; प्रेमको प्राप्ति होनेपर भी संतोष नहीं करना चाहिये। प्रेमराज्यमें उत्तरोत्तर प्रेमकी वृद्धि ही होती रहती है; कहीं उसका अन्त आता ही नहीं। इसलिये वहाँ संतोषको स्थान ही नहीं है। प्रेमकी चाह तो सदा बढ़ती ही रहनी चाहिये।

सबकी परवाह उन एक प्रभुको है, जो सदा-सर्वदा सावधान रहकर हमारे प्रति अपने सुधाभरे सौहार्दको भेजते रहते हैं। हमारे बेपरवाह हो जानेपर भी वे हमें नहीं छोड़ते। हमें सावधान करते रहते हैं।

× × ×

यह सर्वथा युक्तिसंगत तथा सत्य है कि जो स्वयं ही क्षणभङ्गुर, नाशवान्, वियोगशील हैं, उनसे सुखकी आशा करना भारी भूल है। इसीलिये संसारकी किसी वस्तु, स्थिति या प्राणीसे सुखकी आशा करना सुखसे वञ्चित रहना ही है। अतएव एकमात्र श्रीभगवान्‌का ही आश्रय ग्रहण करना चाहिये। वे किसी भी स्थितिमें हमारा साथ नहीं छोड़ते। जन्म-मरण, स्वर्ग-नरक, सुख-दु:ख—सभी अवस्थाओंमें वे सदा साथ रहते हैं। नित्य उनके सांनिध्यमें रहनेकी इच्छा करनेवाला कभी निराश होता ही नहीं। सभीको उनके चरणोंकी शरण ग्रहण करनी चाहिये। उनके चरणोंपर सचमुच हमारा अधिकार है। संसारमें किसीको अपना न मानकर, सबसे ममता हटाकर जो उनके चरण-कमलोंमें ही ममत्व रखता है, ममताकी डोरीसे जो अपने मनको उनके चरणोंमें बाँध देता है, वे चरण फिर उसके अधिकारमें पूरे आ जाते हैं; यह सर्वथा सत्य है।

पाञ्चभौतिक शरीर विनाशशील है ही। जो जन्मा है, उसकी मृत्यु निश्चित है—'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः' पता तो कम उम्रवाले बच्चोंका ही नहीं है, फिर जो वृद्ध हो गये हैं, वे तो चाहे जब कालभगवान्‌के शिकार हो सकते हैं। सभीकी यही दशा होगी। इसमें दु:खकी तो कोई बात नहीं है। यह तो सहज स्थिति है; संसारका यही स्वरूप है—'आया है सो जायगा, राजा रंक फकीर।' इसीसे यह

उचित है कि मनुष्यको आश्रय लेना चाहिये सदा-सर्वदा-सर्वत्र स्थित, नित्य, सत्य, सच्चिदानन्दघन उन भगवान्‌का, जिनका कभी बिछोह होता ही नहीं, हो सकता ही नहीं।

भगवान् मङ्गलमय हैं; उनकी नित्य मङ्गलमयतामें विश्वास करना चाहिये। हमलोग सदा श्रीभगवान्‌की शरण हैं, फिर किसी भी दूसरेकी शरण जानेका प्रश्न ही नहीं है। भगवान्‌के शरणागतको नित्य-निरन्तर 'निर्भय' और 'निश्चिन्त' रहना चाहिये।

× × ×

किसी भी क्रिया या सङ्गसे मनुष्यके मनकी सुप्त या लुप्त संसारकी वासना जाग जाती है, फिर उसका दमन होना कठिन हो जाता है। अतएव हमें नित्य-निरन्तर बड़ी सावधानीके साथ मन, बुद्धि, इन्द्रिय—किसीको भी ऐसे विषयके सम्पर्कमें हो नहीं आने तथा रहने देना चाहिये, जिससे जरा भी वासनाके उत्पन्न होनेका अवसर मिले। भगवान्‌के प्रेमके नामपर भी वासना जग जाती है और मनुष्य अनर्थके पथपर अन्धा होकर चलने लगता है। इसलिये सदा सतर्क रहना चाहिये और भगवान्‌के मार्गमें भी उसीका अनुसरण करना चाहिये, जिससे मन-इन्द्रियोंको सांसारिक विषयोंसे विरत होने तथा उनसे सहज ही उपरत होनेके लिये उत्साह और सुविधा मिले।

× × ×

विषाद, निराशा, दुःख, भय—सब तामसी भाव हैं और श्रीभगवान्‌में अविश्वासके द्योतक हैं। भगवान्‌में और उनकी कृपामें विश्वास होनेपर स्वाभाविक ही चित्तमें आनन्द, शान्ति, संतोष, निर्भयता आदि अपने-आप आ जाते हैं। संसारकी अनुकूल या प्रतिकूल कोई भी स्थिति भगवद्-विश्वासीके आनन्द, शान्ति, निर्भयता, निश्चिन्तताको किसी भी प्रकार कम नहीं कर सकती; क्योंकि उसका आनन्द संसारके अनुकूल प्राणी, पदार्थ या स्थितियोंपर निर्भर नहीं करता। वह तो नित्य साथ रहनेवाले परमानन्द, परम प्रेममय प्रभुसे मिला रहता है, जिसका कभी विछोह होता ही नहीं।

× × ×

मनकी सदा एक-सी स्थिति नहीं रहती। संसारकी राग-द्वेषकी बातें सुननेसे मन विचलित हो जाता है, हर हालतमें प्रभुकी कृपाका समान भावसे दर्शन नहीं हो पाता—इस कमीको दूर करनेके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये और यह विश्वास रखना चाहिये कि प्रभुकी कृपासे यह कमी निश्चय ही दूर हो जायगी। भगवान्‌की कृपाके सामने कोई बाधा या कोई कमी ठहर ही नहीं सकती। वह कृपा तुमपर अपार असीम है—यह निश्चय दृढ़ रखना चाहिये।

[१३]

जहाँ मोह होता है, वहाँ सहज ही ऐसी कामना होती है—'हमारा यह शरीर स्वस्थ रहे और सदा बना रहे।' पर यह वस्तुतः अज्ञान ही होता है। बलिके बकरेकी माँ कितने दिन खैर मनायेगी ? उसकी तो बलि लगेगी ही। इसी प्रकार क्षणभङ्गुर पाञ्चभौतिक शरीर, जो बना है; वह कभी नष्ट होगा ही—दो दिन आगे या पीछे। अतएव इसकी कोई भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये कि यह रहे या चला जाय। न तो यह सोचे-विचारे कि जल्दी चला जाय तो अच्छा, न उसके अधिक दिन रहनेकी ही कामना करे, न उसके भविष्य जाननेकी इच्छा करे। जानेवाली चीज जायगी ही; चिन्ता क्या ? निरन्तर प्रभुका चिन्तन करता रहे और सदा तैयार रहे। चिन्ता यही करे कि प्रभुका चिन्तन निरन्तर होता है या नहीं। ऋषि-मुनि-महात्मा—जिनका एक-एक शब्द मनुष्यके उद्धारके लिये पर्याप्त है—वे भी उस शरीरसे नहीं रहे। शरीर तो नष्ट होगा ही। अतः शरीरसे कभी मोह न करे।

× × ×

संसारमें या तो केवल भगवान् भरे हैं—कहीं दुःख है ही नहीं; सर्वत्र अनन्त अपार सुख छाया है। मृत्यु भी भीषण नहीं है, सुखरूपा है; क्योंकि मृत्युके रूपमें भी

सुखमय भगवान् ही आते हैं। अथवा संसार सर्वथा दु:खालय है; वहाँ जब सुख है ही नहीं, तब वहाँ सुख देनेवाला कोई कैसे होगा ? वैसी स्थितिमें संसारके प्राणि-पदार्थसे सुखकी सम्भावना ही नहीं होनी चाहिये। भगवान्के सिवा कहीं सुख है ही नहीं। पर जिसके मनमें भगवत्प्रेमकी लालसा है, वह तो अपने किसी सुखकी सोचे ही क्यों ? उसका सुख तो अपने प्रियतम भगवान्की रुचिमें है। जिस तरह रखने-करनेकी उनकी इच्छा या रुचि हो, वस्तुत: वही उसके लिये परम सुख है। वे चाहे हमारे मनकी न सुनें, हम निरन्तर उनके मनकी होनेमें असीम आनन्दका अनुभव करते रहें। हम अपने मनकी उन्हें सुनायें ही क्यों ? बल्कि हमारे मनमें ऐसी कोई बात रहे ही क्यों, जो उनके मनमें नहीं है, और जिसे सुनानेकी कल्पना हममें जाग्रत् हो। बस, केवल उनके मनकी ही निरन्तर होती रहे। सोचने-विचारने, समझने-करनेका सारा काम वे ही करें। हम तो केवल उनके अनुकूल जीवन रखते हुए उनका मधुर-मधुर स्मरण करते रहें।

× × ×

प्रेमीको सुख-सुविधा स्वतन्त्र रहती ही नहीं। ऊपरसे चाहे ऐसा दीखता हो कि वह भगवान्की सुख-सुविधाका विचार न करके निज सुख-सुविधाकी ही भगवान्से व्यवस्था करवाता है, पर ऐसा होता नहीं; क्योंकि उसकी निज सुख-सुविधा सब स्वाभाविक ही भगवान्की सुख-सुविधामें समायी रहती है; भगवान्की सुख-सुविधा ही

उसकी सुख-सुविधाके रूपमें प्रकट होती है। यही प्रेमका स्वरूप है। अवश्य ही यह स्थिति सहज नहीं है। वास्तविक स्थिति हुए बिना कई बार इस मान्यतामें भूल भी हो सकती है। रहता है अपनी स्वतन्त्र सुख-सुविधाका अस्तित्व और मान लिया जाता है उसे प्रियतम भगवान्‌की सुख-सुविधा। यद्यपि प्रियतम भगवान् प्रेमीकी कल्याण-कारिणी सुख-सुविधाका ही ध्यान रखते हैं; क्योंकि वे भी प्रेमीको सुखी देखना चाहते हैं, पर वे देखते हैं अपनी निर्मल यथार्थ दृष्टिसे। बहुत बार अज्ञानवश दुःख-दुविधा देनेवाली चीजोंको—परिस्थितियोंको हम सुख-सुविधा-जनक मान लेते हैं, पर भगवान्‌की दृष्टिमें उनका असली रूप छिपा नहीं रहता; क्योंकि उनकी दृष्टिपर मोहका पर्दा नहीं रहता। इसलिये हमारी मानी हुई सुख-सुविधा वे नहीं होने देते या नहीं रहने देते। तब हमें जो दुःख होता है, उसीसे यह सिद्ध हो जाता है कि हमारे मनकी अपनी सुख-सुविधा स्वतन्त्र थी; वह भगवान्‌की सुख-सुविधामें समा नहीं गयी थी। इसीलिये प्रेम-साधनामें बड़ी साव-धानीकी आवश्यकता है।

× × ×

'भगवान् सदा मुझे प्रोत्साहन देते रहें, कभी मेरे मनमें अपने साधनका भरोसा न रहे, सदा प्रभुकी अहैतुकी कृपाका भरोसा मनमें बना रहे, कभी मनमें निराशा उत्पन्न

न हो'—ये बहुत ही अच्छे भाव हैं। भगवान्‌की अहैतुकी कृपापर विश्वास-भरोसा होनेपर निराशाको तो स्थान ही नहीं रहता; अवश्य ही संसारसे निराशा हो जाती है, जो आवश्यक है। साधनाका भरोसा न रहकर कृपाका भरोसा रहे, यह सर्वथा उचित है। पर इतना ध्यान अवश्य रहे कि जीवनमें आलस्य-प्रमाद न आ जाय। भगवान्‌के अनुकूल भगवान्‌की अनवरत सेवामें हमारा जीवन अवश्य लगा रहे।

× × ×

भगवत्प्रेम बड़ी ही पवित्र चीज है और वह सचमुच हृदयका परम पावन गुप्त धन है। जो केवल बाहर है, वह प्रेम नहीं है। यद्यपि प्रेमका प्रकाश बाहर भी होता है, पर वह हृदयके अनन्त अपार प्रेम-समुद्रकी एक तरङ्ग जैसा ही होता है। यथार्थमें तो वह भीतर ही रहता है। इसीसे वह परम पवित्र होता है। भगवान्‌के चरण-कमलोंको हृदयमें बाँधकर रखनेके लिये तो, बस, एक ही डोरी है। वह है—'सब ओरसे अपने मनको हटाकर पूरी ममतासे भगवान्‌के चरणोंमें उसे बाँध देना—विशुद्ध तथा अनन्य प्रेमसे उनके श्रीचरणोंको अपने हृदयमें प्रतिष्ठित कर लेना।' ऐसा करनेपर हृदय सदा उनके पवित्र चरण-कमलोंकी मधुर स्मृतिसे भरा रहेगा; निरन्तर उनके श्रीचरणोंकी सुखद झाँकी हृदयमें होती रहेगी। जितना ही प्रेम बढ़ेगा, उतनी ही स्थायी स्मृति होगी तथा उतनी

ही मधुर पवित्र रसानुभूति होगी। फिर क्षणभरके लिये वे इधर-उधर नहीं जायँगे—'छिन न इत उत जात'।

× × ×

प्रभु' तथा 'प्रभुकी स्मृति'—ये दोनों ही वास्तवमें हमारे अधिकारकी वस्तु हैं, हमारी अपनी चीज हैं। इनको हम अपनी माननेमें हिचकते हैं, इसीसे ये हमसे कभी-कभी अलग—दूर प्रतीत होती हैं। हमारा इनपर अधिकार है, यह हम निश्चय कर लें, फिर वह चीज तो हमारी है ही और हमारे पास रहेगी ही। फिर भी कमी रहे तो प्रभुसे प्रार्थना करनी चाहिये—'हे भगवन्! मैं बार-बार भूल जाता हूँ; पर आप यह तो जानते ही हैं कि मैं केवल आपकी मधुर स्मृतिमें ही डूबा रहना चाहता हूँ। जब कभी आपकी स्मृति होती है, तब मैं संसारको भूल जाता हूँ और मुझे अपार आनन्द मिलता है। मेरी इस जगत्-विस्मृतिको तथा आपके स्मृतिजनित अपार आनन्दको भगवन्! स्थायी कर दीजिये।' इस भावको अपने मनके शब्दोंमें चुपचाप प्रार्थना करनी चाहिये। भगवान्से की गयी 'प्रार्थना' कभी निष्फल नहीं होती।

× × ×

सर्वसमर्थ, सर्वशक्तिमान्, सर्वसुहृद् तो एकमात्र प्रभु ही हैं। जो मनुष्य प्रभुके पवित्र स्थानपर अपनेको बैठाना चाहता है या भगवत्पूजाके स्थानमें अपने हाड़-मांसके गंदे शरीर और अपने कल्पित नामकी पूजा करवाता है तथा

अपनेको शक्तिमान् स्वीकार करता है, वह वास्तवमें पाखण्ड या दम्भ ही करता है।

'मूर्तिमें भगवान्की पूजा करनेवाला मूर्तिको भगवान् माने, पतिव्रता स्त्री पतिको परमेश्वर माने, शिष्य गुरुको परमात्मा माने'--ये सब माननेवालोंके कल्याणके लिये है। वस्तुतः न तो पत्थरकी मूर्ति भगवान् हैं, न हाड़-मांसका पतिका शरीर या गुरुका शरीर ही परमेश्वर या परमात्मा हैं। हाँ! भगवान् सबके अभिन्न-निमित्तोपादान-कारण होनेसे भगवान्के सिवा जगत्में कुछ भी नहीं है—इस दृष्टिसे तो सभी भगवान् हैं।

× × ×

मनुष्यका जीवन कितना क्षणभङ्गुर है! शरीर शान्त होते ही यहाँके—शरीरके सारे सम्बन्ध, सारी आत्मीयता, सारी ममता ध्वंस हो जाती है; कुछ भी अपना नहीं रहता। पर यदि मनमें ममता रही तो बन्धन रहेगा। अतएव मरनेसे पहले ही—जब बात समझमें आवे, तबसे ही—मनसे जगत्से सम्बन्ध तोड़कर भगवान्से जोड़ लेना चाहिये।

मरना सभीको होगा। जो भगवान्का होकर मरता है, उसका मरना मृत्युको मारकर भगवान्के चरण-प्रान्तमें पहुँचानेवाला होता है।

जबतक हम भगवान्के नहीं बन जाते, तबतक ही राग-द्वेषादि चोर हमारे पीछे लगे रहते हैं, घर जेलखाना बना

रहता है और मोहकी बेड़ियोंसे हम बँधे रहते हैं। भगवान्‌के बन जानेपर राग-द्वेषादिरूपी चोर मर जाते हैं, घर भगवान्‌का मन्दिर बन जाता है और मोहकी बेड़ियाँ टूट जाती हैं—

तावद्रागादयस्स्तेनास्तावत् कारागृहं गृहम्।
तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत् कृष्ण न ते जनाः॥

बस, भगवान्‌में मन लगाकर नित्य-निरन्तर भगवद्भजनानन्द-सुधामें सराबोर रहना चाहिये। विषाद, भय, शोक, निराशा आदिको जरा भी स्थान नहीं देना चाहिये।

हो गये जब रामके तब शोक-भय कुछ भी नहीं।
सब तरफ धारा प्रबल आनन्दकी है बह रही॥

× × ×

प्रेम सदा अधूरा ही रहता है—उसमें कभी पूर्णता नहीं आती—यही प्रेमकी महत्ता है। इससे प्रेममें कमी प्रतीत होना ही प्रेमकी स्थितिका द्योतक है। प्रेमकी तड़पन प्रेम बढ़ाती है और वह प्रेम प्रभुको आकर्षित करता है। भगवान् आप्तकाम, पूर्णकाम हैं, परंतु प्रेमकी प्यास उनको भी प्रबल होती है। वे प्रेमीका पवित्र विशुद्ध प्रेममय उपहार स्वीकार ही नहीं करते, उसके लिये लालायित भी रहते हैं। प्रेमीके पवित्र आँसू प्रेमास्पद प्रभुमें प्रेम-विह्वलता पैदा कर देते हैं; वे उन्हें आतुर कर देते हैं और उस प्रेमीके पास खिंचकर चले आते हैं वे। प्रेमीके उन आँसुओंसे भगवान् प्रसन्न होते हैं, क्योंकि वे आँसू—

भगवान्‌के विरहके पवित्र प्रेममय आँसू—प्रेमी भक्तके हृदयमें जलनके रूपमें प्रकट होकर, सुखमय सलिल बनकर नेत्रोंसे प्रवाहित होते रहते हैं। इससे भगवान् उन आँसुओंको मिटाना नहीं चाहते, बहाना ही चाहते हैं। बहते रहें वे आँसू—प्रेमी भक्तको विरह-ज्वाला-संतापका परमसुख देते रहें वे आँसू ! इस प्रकार तड़पना प्रेम-वृद्धि तथा पवित्र प्रेमका रसास्वादन करानेवाला होता है। यह पवित्र प्रेम केवलमात्र प्रेममय, रसमय भगवान्‌में ही होता है, भगवान्‌से ही होता है और होता है केवल प्रेमी भक्तके हृदयमें ही। इसमें जगत्-सम्बन्ध रहता ही नहीं; जगत्-सम्बन्ध सर्वथा विच्छिन्न होकर केवल प्रेममय भगवान्‌से ही सम्बन्ध रहता है। उनमें अनन्य ममता हो जाती है और वह होती है केवल प्रेमकी प्रेरणासे ही एवं देनेके लिये ही; लेनेके लिये नहीं। इसीसे भगवान् उसके दानको ग्रहण करनेके लिये सदा भिखारी बने रहते हैं।

× × ×

सदा-सर्वदा आनन्दमग्न रहना चाहिये। यदि द्वन्द्वरहित केवल आनन्द रोनेमें मिलता हो तो रोनेमें आपत्ति नहीं है; वह रोना भी हँसना ही है। भगवान्‌के विश्वासमें तथा उनके प्रेमराज्यमें नित्य उत्सव, नित्य सुख, नित्य शोभा, नित्य मङ्गल एवं नित्य माधुर्य रहता है। वहाँ विषाद, शोक, अशोभा, अमङ्गल, अमाधुर्यको स्थान नहीं है।

× × ×

पापोंकी कालिमासे कलङ्कित, अपराधोंके भण्डार, दीन, हीन, अनाथ, अनाश्रयके ही तो भगवान् आश्रय हैं। उनकी कृपाके लिये इन्हीं योग्यताओंकी आवश्यकता है। यही उनका विरद है—

ऐसी कौन प्रभुकी रीति।
विरद हेतु पुनीत परिहरि, पावँरनि पर प्रीति ॥

भगवान्का विरद ही पामरोंपर प्रीति करना है। हमारी पामरता ही हमारी योग्यता है। शिशुका दुःख ही माताके आकर्षणकी वस्तु है।

× × ×

साधककी 'अकर्मण्यता' भगवान्को रिझानेके लिये पर्याप्त है। संसारमें जिनको बड़ी कर्मण्यताका अभिमान है, वे कोरे रह जाते हैं और भगवद्विश्वासी अकर्मण्य समझे जानेवाले लोग भगवान्की अहैतुकी कृपाके पात्र हो जाते हैं। भगवान् ऐसे ही दयालु हैं! इसका यह अर्थ नहीं कि भगवद्विश्वासी आलसी होते हैं; वे नित्य सजग, सेवा-परायण होते हैं।

× × ×

तुम सदा-सर्वदा भगवान्की कृपाका अनुभव करो। तुम्हारे मनमें विषादका जरा भी अंश न रह जाय। विश्वास करो—तुमपर भगवान्की बड़ी कृपा है। माना कि तुम अयोग्य हो, पर क्या भगवान्की कृपामें अयोग्यको योग्य बनानेकी शक्ति नहीं है? तुम अपनेको असहाय—

भाग्यहीन क्यों मानते हो ? जिसपर भगवान्‌की कृपा है, वह कैसे तो असहाय है और कैसे भाग्यहीन है ? भाग्यहीन तो वह है, जिसका चित्त भगवान्‌को छोड़कर संसारके भोगोंमें अनुराग रखता है—

सुनहु उमा ते लोग अभागी । हरि तजि होहिं विषय अनुरागी ॥

अपनेको असहाय, भाग्यहीन माननेसे भगवान्‌की कृपाका तिरस्कार होता है।

खूब प्रसन्न रहो और क्षणभरके लिये भी भगवान्‌को न भूलो। भगवान्‌की विस्मृति ही परम विपत्ति, परम दुर्भाग्य, महान् मूर्खता, भयानक पाप और महान् दुःख है। भगवान्‌की अखण्ड-स्मृति ही परम सम्पत्ति, परम सौभाग्य, महान् बुद्धिमत्ता, परम पुण्य और परम सुख है। बस, उस मधुर स्मृतिमें ही जीवनको लगा दो। सब समय, सर्वत्र उनका परम पवित्र मधुर स्मरण होता रहे, सारे पाप-ताप उस पवित्र सुधा-धारामें निश्चय ही बह जायँगे।

× × ×

दुःख तब होता है, जब मनुष्य कुछ चाहता है। सुखके लिये कुछ करना ही नहीं पड़ता—चाह छोड़ दे और सुखी हो जाय। जबतक चाह है, तबतक वह दुःखी होता रहेगा। अनन्त, असीम कृपामय, प्रेममय, परम आत्मीय, परम सुहृद्, अहैतुक प्रेमी भगवान्‌पर विश्वास करके सारी चाह छोड़ दो; उनपर निर्भर हो जाओ, फिर कभी दुःख, अशान्ति, मनमें घबराहट, बेचैनी, निराशा होगी ही नहीं।

जगत्की आशा ही निराशा लाती है। भोगोंकी आशा—कल्पनाको छोड़कर एकमात्र प्रभुपर निर्भर हो जाओ; नित्य-निरन्तर उनकी सुधामयी स्मृतिमें डूबे रहो। फिर तुम्हारे लिये 'दुःख' शब्द कोषसे निकल जायगा। जबतक उनपर विश्वास नहीं, उनके अहैतुक सहज सौहार्दका ज्ञान नहीं, तभीतक अशान्ति है; तभीतक दुःख है।

भोग-जगत्से राग हट जाय तो भगवान्की कृपापर निर्भर होकर मनुष्य निश्चिन्त हो जाय। कुछ भी हो, कैसे भी हो, जरा भी चिन्ता न करे। एकमात्र भगवान्की ही सुखद स्मृति होती रहे। बस, यही एकमात्र साध्य होना चाहिये और सारे प्रयत्न इसीके लिये होने चाहिये।

× × ×

प्रभुके मनकी बात हो, वही अपने लिये परम सुखका कारण बन जाय—तभी समर्पण सिद्ध होता है। फिर किसी भी हालतमें दुःख रहता ही नहीं। वह निश्चिन्त रहता है—प्रभुकी मर्जीपर, वह प्रभुकी ओर देखता रहता है; कभी न घबराता है, न उकताता है; उसके लिये निराशाका तो कोई प्रश्न ही नहीं रह जाता।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि भगवान्पर विश्वास करनेवालोंके लिये निराशाको कोई स्थान ही नहीं रहता। उसकी चित्त-धारा निरन्तर प्रभुकी ओर बढ़ती रहेगी; कभी नहीं रुकेगी, यह निश्चित है, पर उसको भी जगत्से, जगत्के प्राणि-पदार्थोंसे तो आशा-ममता छोड़नी ही पड़ेगी।

भगवान्ने इनसे निराश होनेकी आज्ञा दी है--'निराशी-र्निर्ममो भूत्वा' भोगोंसे निराश हुए बिना भगवान्की ओर बढ़नेकी आशा पूरी होती ही नहीं। हम भोगोंसे निराश होकर भगवान्की पूर्ण आशा करें--प्रभुकी नित्य अनन्त कृपा है ही—हम कभी निराश नहीं हो सकेंगे। इस बातका उत्तरदायित्व प्रभुने स्वयं लिया है--'योगक्षेमं वहाम्यहम्।'

× × ×

भगवान्की सबपर अनन्त कृपा है, इसमें जरा भी संदेह नहीं। जो मनुष्य उस कृपामें जितनी ही कमी मानता है, वह उतना ही कृपाके लाभसे वञ्चित तथा घाटेमें रहता है। अतएव मनुष्यको किसी भी स्थितिमें भगवत्कृपाकी कमीकी तो कल्पना ही नहीं करनी चाहिये, नित्य-निरन्तर अपनेको उस महान् कृपासुधा-सिन्धुमें डूबा ही देखना चाहिये। इसीमें लाभ है; और वास्तवमें है भी यही बात। जगत्की ऊपरी अनुकूलता-प्रतिकूलतासे कृपाका माप-तोल नहीं किया जा सकता। वह कृपा तो हर हालतमें अपने अनन्त रूपमें हमपर रहती है।

विश्वास करो कि प्रभुकी जितनी कृपा एक संतपर है, उतनी ही कृपा हमपर भी है। हम यदि प्रभुके लिये रोते हैं तो वह हमारा सौभाग्य है। हमें रुलानेमें नहीं, हमारा यह सौभाग्य देखनेमें प्रभुको अवश्य आनन्द आता है। वे हमारे

प्रेमास्पद सदा हमें प्रेममें सराबोर--रोते हुए देखना चाहते हैं। प्रभुके लिये रोना ही तो करोड़ों हँसनेसे बढ़कर सुखदायी है।

मनमें सदा बहुत-बहुत प्रसन्न रहो। भगवान्‌की कृपा-पर कभी भी मनमें जरा भी संदेह न आने दो। प्रत्येक परिस्थितिमें उनकी कृपाका अनुभव करो। फिर चाहे रोओ या हँसो—दोनों ही उनकी कृपा-लीलाके दो मनोहर सौभाग्य-चिह्न हैं।

× × ×

कृपासिन्धु दीनवत्सल भगवान् हमारे पिछले दुर्गुण-दुराचारोंकी ओर देखते ही नहीं, वर्तमानके दोषोंको भी अपनी कृपासे तुरंत मिटा देते हैं। वे तो केवल इतना ही देखते हैं कि 'वर्तमानमें इसने अनन्य मनसे मेरा आश्रय ग्रहण कर लिया है या नहीं, मेरी अहैतुकी कृपापर विश्वास करके मुझको ही परम आश्रयदाता मान लिया है या नहीं।' भगवान् अन्तर्यामी हैं। वे हमारे मनकी गहरी-से-गहरी छिपी हुई बातको भी जान लेते हैं और जिस क्षण उन्हें हमारा अन्तस्तल उनके अनन्य आश्रयको ढूँढ़ता मिलता है, उसी क्षण वे हमें बिना किसी शर्तके अपनाकर कृतार्थ कर देते हैं।

[१४]

जहाँतक हो सके, मालाके नियमसे एक लाख नाम-जप रोज हो जाय तो बहुत अच्छा है। पाठका क्रम भी टूटना नहीं चाहिये। अक्रोध, सत्य, सर्वत्र भगवद्दर्शन, किसीकी निन्दा न करना—इनका नियमितरूपसे पालन किया जाय तो अत्युत्तम है। रातको सोते समय भगवान्‌का चिन्तन करते हुए सोनेसे कुछ समय बाद भगवान्‌के स्वरूप तथा भगवत्-लीला-सम्बन्धी स्वप्न आने लगते हैं, जो आनन्ददायक होनेके साथ ही प्रभुके प्रति प्रेमका उदय तथा वर्धन करनेवाले होते हैं। प्रभुका स्मरण सदा बना रहे और अपना प्रत्येक कार्य केवल प्रभुप्रीत्यर्थ हो, इसका विशेष ध्यान रखना चाहिये। चित्तका भगवान्‌के साथ नित्य सम्पर्क बना रहना चाहिये।

× × ×

जहाँ हमारे मनकी नहीं होती है, वहाँ हमें मानना चाहिये कि हमारे प्रेमास्पद प्रभुके मनकी होती है। इसलिये उसमें विशेष प्रसन्न होना चाहिये। यह सत्य है कि प्रभुमें पूर्ण समर्पण हमारा नहीं हो पाया। वह यदि हो जाता तो हमें सब अवस्थाओंमें सदा प्रसन्नता, सदा संतोष रहता। यही समर्पणका स्वरूप है। शरीर कहीं रहे, किसी भी स्थितिमें रहे, हम निरन्तर प्रभुके हाथमें हैं

उनकी मङ्गलमयी गोदमें हैं। वे कभी, किसी हालतमें हमारा साथ नहीं छोड़ते और नित्य-निरन्तर हमारा मङ्गल कर रहे हैं—इस तथ्यका दर्शन समर्पित-जीवनमें होता रहता है और इससे सदा संतुष्टि, सदा प्रसन्नता रहती है। कोई भी अनुकूलता-प्रतिकूलता फिर उसे सुख-दुःख नहीं दे सकती। वह नित्य अखण्ड आनन्दमें रहता है। हमें यह निश्चितरूपसे मानना चाहिये कि हमपर प्रभुकी अपार कृपा, असीम स्नेह है। हम कभी भी उनकी सहस्र-सहस्र धाराओंमें प्रवाहित मङ्गलमयी कृपा तथा स्नेह-सुधासे वञ्चित तो हैं ही नहीं, वरं सदा उसीमें सराबोर हैं। इसीसे मानना चाहिये कि हमपर भगवान्की बड़ी कृपा है—हम अभागे नहीं हैं, बड़े भाग्यवान् हैं। अभागा तो वह है, जो भगवान्को छोड़कर संसारके विषयोंमें—संसारके प्राणि-पदार्थोंमें भोग-दृष्टिसे प्रेम करता है—

सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं बिषय अनुरागी ॥

× × ×

प्रतिकूलता प्रायः साधकोंको भी सहन नहीं होती है; पर असलमें तो प्रतिकूलता रहनी ही नहीं चाहिये; परिस्थिति चाहे कैसी भी हो। जब प्रेमास्पदका सुख ही अपना सुख बन जाता है, तब प्रतिकूलता अपने मनकी न

होनेमें नहीं होती, प्रेमास्पदके मनकी न होनेमें ही होती है। हमें भगवान्‌को प्रेमास्पद मानकर यही भाव रखना चाहिये। पर भगवान्‌को जब हम प्रेमास्पद मान लेते हैं, तब भगवान् हमें प्रेमास्पद मान लेते हैं और वे हमारे मनकी करने लगते हैं। पर हमें तो यही निश्चय रखना चाहिये कि भगवान्‌के मनकी अनुकूलतामें ही हमें सर्वदा और सर्वत्र अनुकूलता दिखायी दे।

× × ×

संसारके प्राणि-पदार्थोंसे न सुखकी आशासे सम्बन्ध करना है, न दुःखकी आशङ्कासे सम्बन्ध छोड़ना है। असलमें सम्बन्ध तो केवल एक प्रभुसे ही रखना है; सुख-दुःखका कोई प्रश्न ही नहीं। प्रभुका प्रेम ही सारे सम्बन्धोंका सूत्र है। जिससे प्रभु प्रसन्न हों, वह दुःख भी महान् सुख है और जिससे प्रभुकी अप्रसन्नता हो, वह महान् सुख भी नरक-दुःखसे बढ़कर दुःखदायी है। शरीर रहे या जाय, अपना और प्रभुका सम्बन्ध नित्य बना रहे।

× × ×

भगवच्चर्चामें मन लगाना तो बहुत शुभ है, परंतु पूजा, पाठ, जप आदि कभी भी छोड़ने नहीं चाहिये; उनको तो चालू रखना तथा श्रद्धा-प्रेमपूर्वक चालू रखना आव-

श्यक एवं लाभदायक है। भगवत्प्रेमके लिये ये शुभ साधन छोड़े नहीं जाते, बल्कि सावधानीके साथ श्रद्धापूर्वक किये जाते हैं। हाँ, प्रेमकी मस्तीमें ये छूट जाया करते हैं—जैसे नदीसे पार हो जानेपर नाव छूट जाती है, जैसे सूर्योदय होनेपर दीपक अनावश्यक हो जाता है। अतएव पाठ, पूजा, भजन, जप—सब श्रद्धापूर्वक करते रहना चाहिये; इन्हें छोड़नेकी कल्पना भी नहीं करनी चाहिये।

× × ×

सबके मनकी सुननेवाले श्रीभगवान् हैं। वे सदा सबके पास रहते हैं हर-हालतमें और रहते भी हैं परम सुहृद्-रूपमें। उनपर विश्वास करके मनुष्य अपने मनकी बात चाहे जब, चाहे जहाँ उन्हें सुना सकता है। तुम प्रभुको मनकी आँखोंसे सदा अपने पास देखते हो, प्रभुके हाथोंको अपने मस्तकपर पाते हो, उन प्रभुको ही अपने मनकी बातें—सारी बातें निस्संकोच सुनाया करो—अपनी सरल भाषामें, सरल हृदयसे। भगवान्से बात करनेमें, प्रार्थनामें किसी कलाकी आवश्यकता नहीं है; आवश्यकता है—सत्य और सरलताकी।

× × ×

मनुष्य बड़ा कमजोर प्राणी है; उसके मनमें वासनाएँ छिपी रहती है। भगवान्के नामपर भी भोग-वासना जाग्रत्

हो सकती है। अतः सदा सावधानीके साथ वासनाओंको जड़-मूलसे काटनेकी ही कोशिश करनी चाहिये। इसलिये मैं शृङ्गारके पदोंसे—बहुत सुन्दर होनेपर भी—डरता हूँ। वासनाओंका उभड़ आना बहुत सहज है, उन्हें दबाना बड़ा कठिन है। संसारमें भगवान्‌के नामपर—श्रीराधा-कृष्णकी पवित्र लीलाके नामपर—वासनाएँ उभाड़ी जाती हैं और उनकी लीलाओंका दुरुपयोग किया जाता है; यह बहुत बुरा है। मैं इससे सदा बचने-बचानेकी कोशिश किया करता हूँ। यही सलाह अपने प्रत्येक स्वजनोंको दिया करता हूँ। तुमको भी यही सलाह देता हूँ कि शृङ्गारके पद, चाहे किसीके हों—नहीं देखने-पढ़ने-सुनने चाहिये। भगवत्प्रेमके त्यागमय आदर्शको उपस्थित करनेवाले भावोंका ही मनन करना चाहिये। परीक्षित्-सरीखे पुरुषने भी 'रासपञ्चाध्यायी' सुनकर भगवान्‌में दोष-भावना कर ली, तब दूसरोंकी तो बात ही क्या है? श्रीचैतन्यमहाप्रभु-सरीखे महान् विरक्त तथा भगवत्प्रेमके तत्त्वको समझनेवाले पुरुषोंके अतिरिक्त दूसरे लोग, जो इस प्रकारकी लीलाओंके पदोंको पढ़ते-सुनते हैं, वे या तो भगवान्‌में दोष देखने लगते हैं या वासनाओंके चक्रमें पड़कर श्रीराधा-कृष्णकी दिव्य लीलाओंको गंदी भौतिक क्रिया समझकर मनसे गिर जाते हैं। ये दोनों ही स्थितियां वाञ्छनीय नहीं हैं।

सच्चे प्रेमी कवि जिस पवित्र प्रेमराज्यमें पहुँचकर जिस बातको कहते हैं, उस राज्यमें पहुँचे बिना प्रेमी कवि-की वह बात समझमें नहीं आती और उसमें खुला शृङ्गार स्पष्ट दिखायी देता है, जिसे पढ़-सुनकर मनुष्यकी वृत्ति पतनकी ओर जाने लगती है। 'रासपञ्चाध्यायी'के कुछ शब्द, भक्त जयदेवजीका 'गीतगोविन्द' तथा सूरदासजी आदि महात्माओंके कुछ पद भी इसके उदाहरण हैं। यद्यपि इनमें वस्तुतः कोई अश्लीलता तथा बुरी बात नहीं है, तथापि मर्यादा महत्त्वकी वस्तु है और उस मर्यादामें रहना ही उचित एवं आवश्यक है। साधकके जीवनमें मर्यादा और लोक-संग्रहका आदर अवश्य होना चाहिये। मैं तो अपनेको भी इस दिव्य प्रेमराज्यका अधिकारी नहीं मानता।

× × ×

अपनी ओरसे भरसक पूरा प्रयत्न करना और भग-वत्कृपाके बलपर ऐसा बार-बार निश्चय करना कि 'मेरा प्रयत्न अवश्य सफल होगा।' मनुष्य यही करे, फल तो श्रीभगवान्के हाथमें है। उनके मङ्गलमय विधानके अनुसार जो कुछ रचा गया है, वही होगा; वही वस्तुतः हमारे लिये कल्याणकर होगा। भगवान्को स्मरण करते हुए कर्तव्य-पथपर डटे रहना चाहिये। बुद्धिमानीके साथ धीरे-धीरे आगे बढ़ना चाहिये न छलाँग मारनेकी कोशिश करनी

चाहिये, न रुकना चाहिये। मार्ग देख-देखकर भगवान्‌के भरोसे चलना चाहिये। यदि भगवान्‌का भरोसा सच्चा होता है तो मार्गकी कठिनाइयाँ भगवत्कृपासे दूर हो जाती हैं—

'सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।'

भगवद्विश्वास, कर्तव्यशीलता, धीरता, ईमानदारी और उत्साहको सदा अपने साथ रखना चाहिये।

× × ×

संसारका यही स्वरूप है—यह भोगमय संसार दूरसे बड़ा सुहावना मालूम होता है। जैसे अबोध छोटा शिशु किसी काले सर्पको बड़ी कोमल वस्तु समझकर पकड़े और वह उसे डँस ले, उसी प्रकार हमलोग संसारको स्पर्श करते हैं और बार-बार उससे डँसे जाते हैं। यही मोह है। भगवान्‌ने गीतामें स्पष्ट कहा है—'इन्द्रियोंके साथ विषयोंका संस्पर्श होनेपर आरम्भमें अमृततुल्य लगता है, परंतु उसका परिणाम तो जहरके सदृश ही होता है।'

× × ×

संसारमें इच्छाओंका कोई अन्त नहीं है और भौतिक पदार्थोंकी इच्छा अन्तमे दुःख देनेवाली होती है। इच्छा करनी चाहिये—भगवान्‌के भजनकी और भगवान्‌का प्रेम प्राप्त करनेकी। यही वास्तविक सदिच्छा है।

× × ×

जीवको कुसङ्गका प्रगाढ़ अभ्यास है। वह अनन्त जन्मोंसे कुसङ्गमें ही रस लेता आया है, उसीका अभ्यास करता आया है। इस कारण किंचित् असावधानीसे ही, तनिक-से भी सत्सङ्गमय वातावरणसे मनके पृथक् होनेपर ही वह दृढ़कालीन अभ्यास अपनी ओर खींचती ही है। दृढ़ अभ्यासका अभ्यास भी इसका एक कारण है। साथ ही सत्, रज और तम—ये बढ़ते-घटते रहकर समय-समयपर अपना प्रभाव डालनेका प्रयत्न करते हैं। हम सजग रहें और भगवान्‌के चरणोंमें पहुँचनेके लिये उनके चरणोंका ही दृढ़ आश्रय लिये रहें तथा इसके लिये सदा उनसे कातर मनसे प्रार्थना करते रहें, तभी मनकी कुसङ्ग-दोषसे रक्षा सम्भव है। भगवान्‌की कृपापर विश्वास रखकर प्रयत्न करते रहना चाहिये।

× × ×

भगवान्‌की कृपापर विश्वास कर जीवनका प्रत्येक कार्य यथायोग्य सुचारुरूपसे सावधानीके साथ करना और करना केवल प्रभु-सेवाके निमित्त, प्रभुप्रीत्यर्थ एवं भगवान्‌का निरन्तर स्मरण रखना—आध्यात्मिक उन्नतिके लिये ये साधन परम लाभदायक हैं।

शीघ्र-से-शीघ्र आध्यात्मिक उन्नति होनेका उपाय है—शीघ्र-से-शीघ्र उन्नति होनेकी 'तीव्रतम आकाङ्क्षा'।

भूख लगनेपर ही अन्नका अनुसंधान होता है और भगवान्‌की कृपासे भूखेको अन्न मिलता ही है।

× × ×

कालकी गति रुकती नहीं। मनुष्य चाहे तो उस कालमें कोई विशेष लाभका काम कर ले अथवा हानिका, या यों ही प्रमाद-आलस्यमें कालको खो दे।

संतोष तो आध्यात्मिक उन्नतिमें होना ही नहीं चाहिये। संतोषका क्षेत्र तो जागतिक भोगोंमें ही है, उनमें संतोष अवश्य करना चाहिये; संतोष करनेसे ही सुखकी प्राप्ति होती है। आध्यात्मिक उन्नतिमें तो असंतोष होना ही लाभदायक होता है, जो साधकको नित्य-निरन्तर आगे बढ़ाता रहता है।

× × ×

भगवान्‌का स्मरण करते हुए ही सारे काम करने चाहिये, जिससे चित्तमें प्रसन्नता रहे। अपने मनमें कमजोरी नहीं लानी चाहिये। यह समझना चाहिये कि हमारी प्रत्येक कमजोरी श्रीभगवान्‌की शक्तिका आह्वान करनेवाली है। दैन्य बड़ी अच्छी चीज है, बशर्ते कि वह निराशा, असफलता, विषाद उत्पन्न करनेवाला तथा साहस नष्ट करनेवाला न हो। सच्चा दैन्य वही है, जो

श्रीभगवान्‌की कृपाशक्तिको बुलाता है—भगवान्‌की शक्तिको स्वतन्त्र रूपसे कार्य करनेके लिये मार्ग देता है। इसी प्रकार दुर्बलता भगवान्‌की कृपाशक्तिको बुलानेवाली होती है। हमारी कमजोरीमें कोई ताकत नहीं है, जो भगवान्‌की कृपाशक्तिको रोक दे। इस दृष्टिसे स्वयं दीन और दुर्बल होते हुए भी मनुष्य भगवान्‌की कृपापर विश्वास करके अत्यन्त सबल और कठिन-से-कठिन कार्योंके करनेमें समर्थ हो सकता है।

× × ×

भगवत्प्रेमकी ओर प्रगतिके बिना जीवनका व्यतीत होना वास्तवमें सोचनीय है। इसके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये और प्रेम प्राप्त करनेकी लालसाको खूब बढ़ाना चाहिये। भगवान्‌का स्मरण अधिक-से-अधिक हो, इसका प्रयत्न भी करना चाहिये। किसी मनुष्यकी ओर न देखकर हम सभीको सर्वसमर्थ परम सुहृद् श्रीभगवान्‌के चरणोंकी ओर ही देखना चाहिये। उनके चरणोंका ही सबसे बड़ा सहारा है।

× × ×

भगवान्‌का स्मरण मधुर तथा विशुद्ध होता रहे और भगवत्कृपापर विश्वास बढ़ता रहे—यह करना है।

दैवी-सम्पत्ति, भगवान्‌में रुचि और भोगोंसे विरक्ति बढ़ती रहे तो समझना चाहिये, उन्नति हो रही है।

आसुरी-सम्पत्ति, भोगोंमें रुचि और भगवान्‌में अरुचि बढ़ती हो तो समझना चाहिये कि अवनति हो रही है। यही कसौटी है।

× × ×

यह निश्चय कीजिये—

भगवान्‌की मुझपर बड़ी कृपा है, उन्होंने मुझको अपना लिया है और मैं उनकी ओर उनकी कृपासे ही बढ़ता जा रहा हूँ।

भगवान् नित्य मेरे पास रहते हैं और उनकी मुझपर अत्यन्त प्रीति है; मैं सदा उनके स्नेह-सागरमें डूबा हूँ।

मैं भगवान्‌का हो गया, इसलिये जगत्‌का मेरे ऊपर कोई प्रभाव नहीं रह सकता।

श्रीश्यामसुन्दर नित्य-निरन्तर मुझे अपनी लीलाकी झाँकी कराते रहेंगे और मुझे भी अधिकार देंगे—लीला-परिकर बनकर लीलामें सम्मिलित होनेका।

संसारमें जब जो कुछ होता है, होगा, सब भगवान्‌का मङ्गल-विधान है। मैं सब परिस्थितियोंमें भगवान्‌के मङ्गल-विधानको देखूँगा और सदा प्रसन्न रहूँगा। तदनन्तर मङ्गल-विधानकी बात भी मेरे मनमें नहीं रहेगी, मैं सदा

प्रत्येक परिस्थितिमें इस बातको लेकर परम प्रसन्न रहूँगा कि मेरे परम प्रेमास्पद श्रीश्यामसुन्दर इससे प्रसन्न हैं। उनकी प्रसन्नता ही मेरे जीवनकी स्थिति बन जायगी। मैं कभी उन्हें और उनकी प्रीतिको भूलूँगा ही नहीं।

× × ×

तीन विश्वास करनेकी बातें हैं—

(१) भगवान्‌ने मुझको अपना लिया है; मैं भगवान्‌का हो चुका हूँ—सदाके लिये।

(२) जब मैं भगवान्‌का हो चुका हूँ, तब मेरे सम्बन्धमें सारी चिन्ता भगवान्‌को ही है। वे ही सब सँभाल रखेंगे और वे जो कुछ करेंगे, सो निश्चित-निश्चित मेरे मङ्गलके लिये करेंगे।

(३) जब मैं उनका हो गया तो मैं सदा उनका स्मरण करूँगा। मेरे चिन्तनको वे बनाये रखेंगे तथा मेरे मनमें प्रधानरूपसे विषय-चिन्तन कभी नहीं होने देंगे।

—ये तीनों बातें उनकी कृपासे होंगी, पर यथाशक्ति ये तीन साधन अपनाने चाहिये—

(१) जहाँतक बने, भगवान्‌का निरन्तर चिन्तन करना—लीला-दर्शन करना तथा उनको सदा अपने समीप समझना।

(२) उनके नाम-जपकी पूरी चेष्टा करना।

(३) उनके अनुकूल आचरणकी पूरी चेष्टा करना।

अनन्य भगवन्निष्ठा चिन्ता, भय, विषयासक्ति, लोक-ममता, विषाद आदिका नाश करके सदा प्रसन्नता, निर्भयता, भगवत्प्रेम, भगवच्चरण-ममत्व एवं नित्य परमानन्द प्रदान करती हैं। संसारकी अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितिका भगवन्निष्ठ व्यक्तिपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता—

'दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।'

वह निरन्तर भगवान्‌के प्रेमानन्दमें डूबा रहता है। उसका यह आनन्द दुःखका प्रतिद्वन्द्वी द्वन्द्वात्मक सुख नहीं है, वह केवल आनन्द है। जबसे इस पथपर मनुष्य आता है, तभीसे उसे विलक्षण मौज प्राप्त होने लगती है और जब प्रियतम श्रीकृष्ण ही उसकी मौज बन जाते हैं, तब तो मौजके सिवा अन्य किसी विरोधी तत्त्वका खोजनेपर भी पता नहीं लगता। सारी आसक्ति, सारी ममता उन्हींके साथ जुट जानेपर एक विलक्षण मौज होती है। यह जिसको होती है, वही जानता है। भीषण-से-भीषण जागतिक दुःखकी स्थितिमें भी प्रियतम प्रभु मौजरूप बने

हुए उसके हृदयसे लगे रहते हैं। लोग कुछ भी कहें—मानें, वह मोहसे कभी मुक्त नहीं हो सकता।

× × ×

हमारी आसक्ति-ममता होनी चाहिये—एकमात्र श्रीभगवान्‌में ही तथा भगवान्‌की दी हुई परिस्थितिका, प्राणि-पदार्थका, जिम्मेवारीका भगवत्-सेवार्थ पूरा सदुपयोग होना चाहिये। इन वस्तुओंके लिये चिन्ता नहीं करनी चाहिये; इनके द्वारा भगवत्पूजा होनी चाहिये। भगवान्‌की सेवाके लिये मिली हुई किसी भी वस्तुकी अवहेलना न हो। जड़ पदार्थ भी श्रीभगवान्‌की ही सृष्टि हैं। भगवान्‌की सेवामें उनका उपयोग हो तो उनका भी बड़ा महत्त्व है। श्रीयशोदा मैया श्रीश्यामसुन्दरके सुखार्थ बड़ी आसक्तिसे घरकी चीजोंको सँभालती थीं। श्रीगोपाङ्गनाएँ तो अपने शरीर-शृङ्गारकी श्रीश्यामसुन्दरके सुखार्थ पूरी रक्षा करती थीं।

× × ×

समर्पण एक ही बार हुआ करता है। समर्पणके साथ ही ग्रहण भी हो जाता है। पूर्ण समर्पण हो जानेपर समर्पक अलग नहीं रह जाता; समर्पण करनेवाला स्वयं ही समर्पित हो जाता है। फिर उसके अन्दर या उसके द्वारा जो कुछ

होता है, वह सब उसका नहीं होता; जिसने ग्रहण किया है, उसीका होता है। समर्पण करनेवाला तो यह भी नहीं जानता कि 'मैंने कुछ किया भी है।' यह 'आत्मविस्मृति' ही प्रेमकी भूमिका होती है। गोपीभावका महान् मङ्गल-प्रारम्भ यहींसे होता है और इसीमें इसका पर्यवसान भी है।

× × ×

यह बिल्कुल सत्य है कि जहाँ हमारा मन है, वहीं हम हैं। हम मन्दिरमें रहकर भी शौचालयमें रह सकते हैं और शौचालयमें रहकर भी मन्दिरमें। यह तो जगत्की बात है, मनोवैज्ञानिक तत्त्व है; पर यदि भगवान्में, उनकी किसी लीलामें हमारा मन है, तब तो हम सचमुच ही वहीं भगवान्में, उनकी लीलामें हैं ही; क्योंकि सत्स्वरूप भगवान् सदा-सर्वत्र हमारे मनोनुकूल लीलारूपमें हैं ही।

× × ×

वस्तुतः यह प्रपञ्च है ही नहीं। सदा, सर्वत्र, सब रूपोंमें एकमात्र श्रीकृष्ण ही लीलायमान हैं; सृजन, संहार प्रत्येक परिवर्तन—सब उनकी लीला है। सदा उन्हींको लीलाके रूपमें भी उन्हीं लीलामयको देखना चाहिये। सर्वकाल, सर्वदेश, समस्त पदार्थ सब उन्हींमें हैं, उन्हींसे हैं;

वे ही सबके बाहर-भीतर तथा सबके रूपमें हैं। यह प्रत्यक्ष है और यही परम सत्य है।"

× × ×

सृजन और संहार—दोनोंमें ही भगवान्‌की मङ्गलमयी लीलाका अनुभव करना चाहिये। उनके मधुर मनोहर स्मित हास्यको देखते रहनेपर किसी भी अवस्थामें शोक-विषाद नहीं होता। बस, सारा जीवन भगवान् श्रीश्यामसुन्दरमें लग जाय, निरन्तर उनकी स्मृति होती रहे तथा उनके मधुर मनोहर सांनिध्यका अनुभव होता रहे।

श्रीश्यामसुन्दरका तथा उनकी लीलाका चिन्तन होता रहे। मनमें यह निश्चय सदा बना रहे—'मैं उनका ही हूँ, जगत्‌का नहीं।' शरीर तथा शरीरसे सम्बन्धित किसी भी प्राणि-पदार्थका आधिपत्य न रहे; श्रीश्यामसुन्दरका एकाधिपत्य हो जाय। नाम-रूप सब उन्हींके चरणोंपर समर्पित हो जायँ।

× × ×

लीला-चिन्तनके समय लीला-दर्शनमें तन्मय होनेका अभ्यास बनाना चाहिये। 'तन्मयता'का अर्थ है—चिन्तनकी प्रगाढ़ता। जैसे संसारमें कभी-कभी हमलोग किसी

विषयका चिन्तन करते हैं, तब ऐसी प्रगाढ़ता आती है कि उस विषयकी स्पष्ट अनुभूति होने लगती है, इसी प्रकार लीला-चिन्तनमें होना चाहिये। अर्थात् जिस लीलाका हम चिन्तन करें, उसकी हमें स्पष्ट अनुभूति होने लग जाय--मानो वह लीला हमारे सम्मुख हो रही है।

× × ×

जिसे अपनेमें प्रेम 'दीखता' है, उसमें प्रेम 'होता' नहीं। प्रेम कभी भी यह नहीं कहता कि 'मैं हूँ'; वह तो चोरकी तरह छिपा रहता है और उत्तरोत्तर अपनेको बढ़ाया करता है। प्रेमके साथमें 'दैन्य' तो और भी विलक्षण गुण है। श्रीराधाका यही भाव परम श्रेष्ठ माना गया है, जो स्वयं प्रेमकी अगाध समुद्र होकर भी वे अपनेको अत्यन्त दीन-हीन, प्रेमशून्य मानती हैं।

× × ×

मनुष्य यदि अपने दोषोंको देख पाये और अपनेको असमर्थ समझकर सर्वसमर्थ अहैतुक प्रेमी भगवान्‌की कृपा-पर निर्भर करे तो उसपर भगवान्‌की कृपा-सुधा-धारा निश्चय ही बरसकर उसे सर्वथा दोषमुक्त करके सदाके

लिये भगवान्‌का निजजन बना देती है। बस, एक बातको मनमें दृढ़ रखना चाहिये—

'मैं भगवान्‌का हूँ—भगवान्‌का ही हूँ। भगवान् ही मेरे हैं और कुछ भी मेरा नहीं।'

'भगवान्‌की स्मृति निरन्तर बनी रहे और उसमें आसक्ति बढ़ती रहे'—ऐसा मनोरथ तथा प्रयत्न करना चाहिये। भगवान्‌के प्रति पूर्ण समर्पणके लिये सदा-सर्वदा सचेष्ट रहना चाहिये।

× × ×

भगवान् श्रीश्यामसुन्दरकी कृपा तो सदा ही बरसती रहती है—अपार और अनन्त रूपमें। उसे ग्रहण करनेकी शक्ति भी उनकी कृपासे ही मिलती है। अपनी असमर्थता और उनकी कृपाका प्रगाढ़ विश्वास ही कृपाग्रहण करनेका साधन है—

तुम्हरिहि कृपा तुम्हहि रघुनंदन।
जानहिं भगत भगत उर चंदन॥

× × ×

भगवान्‌में विश्वासपूर्वक मन लग जाय तो सारे विघ्नोंका नाश उनकी कृपासे अनायास ही हो जाता है और सारे 'योग-क्षेम' (अप्राप्त साधनकी प्राप्ति तथा प्राप्त साधनकी रक्षा)-का वहन वे स्वयं करते हैं—

'मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।'
'.................. योगक्षेमं वहाम्यहम्॥'

अतः भगवान्‌की कृपापर विश्वास रखकर निश्चिन्त आगे बढ़ते रहो।

'सखा-भावसे श्रीकृष्णके साथ जो मधुर सम्बन्ध है, इसका निरन्तर अनुभव होता रहे, अर्थात् उनके पास बैठे रहने, काम करने, मुसकराने तथा लीलामें साथ रहनेकी अनुभूति होती रहे'—तुम्हारा इस प्रकारका मनोरथ बहुत ही उत्तम है।

जहाँतक मेरा विश्वास है—कन्हैया बड़े ही सरल प्रेमी हैं। उनसे जो जैसे चाहे, वैसे ही करा सकता है। शर्त एक ही है कि भाव सच्चा हो और अनन्य हो। तुम अपने मनमें यह निश्चय कर लो कि 'कन्हैयाने तुमको अपने प्यारे सखाओंमें स्वीकार कर लिया है', और फिर निरन्तर उनके साथ रहनेकी दृढ़ भावना तथा अनुभूति करो। होगा तो सब उनकी कृपासे ही। जो उनकी कृपापर विश्वास करता है, वह कभी निराश नहीं होता। निरन्तर भगवान् श्रीकृष्णके साथ रहने, उनकी सेवा करने एवं उनकी लीलाका दर्शन करनेका अभ्यास करना चाहिये। जितना-जितना मन उनकी संनिधिमें रहेगा, उतनी-उतनी ही लीलानुभवकी अधिक सुविधा होती जायगी।

× × ×

तुम्हारा मेरे पास रहनेका मन है, यह मैं जानता हूँ। यह तुम्हारा प्रेम है। परंतु अपनेको तो सदा सर्वदा

प्रियतम श्रीकृष्णकी 'हाँ' में 'हाँ' मिलानी है। वे जहाँ, जैसे, जब रखें—वहीं रहना है। बस, चित्तसे एक क्षणके लिये भी उनकी प्यारी और मीठी स्मृति न भूले। शरीरको खूब खराब करके हवा-पानी बदलनेके बहाने मेरे पास आनेकी इच्छा क्यों करनी चाहिये? शरीर भी तो उनका है; वे जैसे चाहें, वैसे उसे रखें। तुम उसे खराब करनेवाले कौन हो? तुम्हारा भाव सुन्दर है, पर सबकुछ प्रियतम श्रीकृष्णपर छोड़कर निश्चिन्त हो जाना चाहिये।

× × ×

तुम्हारे मनमें जो वह अभिलाषा है कि 'निरन्तर प्रेमास्पद श्रीकृष्णकी मधुर स्मृति होती रहे और उनके सुखमें सुखी रहा जाय तथा मनसे सदा-सर्वदा व्रजमें श्रीकृष्णके साथ ही रहा जाय'—सो ये दोनों ही अभिलाषाएँ बड़ी ही श्रेष्ठ हैं। भगवान्‌की बड़ी कृपासे ही ऐसी सद्भावना हुआ करती है। पर ये चीजें दे देना मेरे हाथकी बात नहीं है। मैं तो स्वयं सदा इनके लिये तरसता रहता हूँ। प्रियतम भगवान् श्रीकृष्णसे प्रार्थना करो, वे ही तुमको देंगे।

× × ×

भगवान्‌के प्रत्येक विधानमें उनको सुखी देखकर सदा संतुष्ट रहना चाहिये। 'वे जो कुछ विधान करते हैं, हमारे मङ्गलके लिये करते हैं'—यह बहुत ऊँची बात होनेपर भी इससे तो नीची ही है कि 'हमें अपने मङ्गल-अमङ्गलकी कोई कल्पना ही न हो। बस, वे प्राणाराम सुखी होते हैं, इससे प्रत्येक स्थिति हमारे लिये परम सुखमयी है।' नित्य-निरन्तर उनके सुखसे सुखी होनेवाला तथा उनकी मधुर मुसकानमें परम आह्लादकी अनुभूति करनेवाला मन होना चाहिये। संसारमें जो कुछ है, उन्हींकी अभिव्यक्ति है और यहाँ जो कुछ हो रहा है, सब उनकी लीला है। लीलामें सभी दृश्य और रस आते हैं—मधुर भी और भयानक भी। सबमें उनका मङ्गलमय दर्शन और स्पर्श प्राप्त करके परम प्रसन्न रहना चाहिये।

× × ×

भगवान् श्रीश्यामसुन्दर तथा भगवती श्रीराधारानीकी अपने ऊपर सदा अनन्त कृपा समझनी चाहिये। समझनी क्या है, वह तो सदा-सर्वदा है ही; हर अवस्थामें उनकी कृपा कार्य कर रही है। यदि हर स्थितिमें उनकी प्रसन्नता-को, सुखको तथा उनके मधुर मनोहर मृदुल हास्ययुक्त मुख-कमलको ही देखा जाय, तब तो प्रत्येक परिस्थिति उनको सुख देनेवाली होनेके कारण परम सुखमयी ही

जाती है। दूसरी बात—नित्य-निरन्तर उनको अपने अत्यन्त निकट एवं सब कार्योंमें साथ देखना चाहिये तथा केवल मन-बुद्धिसे ही नहीं, इन्द्रियोंसे भी उनका दिव्य संस्पर्श प्राप्त करते रहना चाहिये।

× × ×

साधकको चाहियेकि जरा भी वहम न करे और बीमारीका तनिक भी चिन्तन न करके निरन्तर भगवच्चिन्तन ही करता रहे। 'मैं बीमार, मैं बीमार'—न सोचकर, 'मैं प्रभुका निजजन, प्रभुका अपना सेवक, प्रभुका कृपापात्र'—यों सोचे और निश्चय करे।

× × ×

'भगवत्प्रेम'में यह मान्यता सहज होती है—'भगवान् हमारे परम प्रेमास्पद हैं; उनका मन जिस बातमें राजी है, उसीमें हम राजी हैं; चाहे वह बात हमारे लिये कितनी ही विपरीत क्यों न हो।' प्रेमास्पद यदि प्रेमीको समीप न रखकर बहुत दूर रखनेमें ही प्रसन्न है तो प्रेमी इस वियोग-दुःखको सुखके रूपमें अनुभव करता है; क्योंकि उसे तो प्रेमास्पदके सुखमें ही सुख है। जब भगवान्‌का कोई मङ्गल-विधान हमारे मनके प्रतिकूल हो, तब हमें यह मानना चाहिये कि 'भगवान् ऐसा ही चाहते हैं' और तुरंत हमारे मनकी प्रतिकूलता अनुकूलताके रूपमें परिणत हो जानी चाहिये;

क्योंकि हमें तो प्रेमीके नाते भगवान्‌की प्रसन्नतामें ही परम सुखका अनुभव करना है। चातकके प्रेमकी इतनी महत्ता इसीसे है कि वह अपने प्रेमास्पद मेघके बुरे बर्तावपर जरा भी ध्यान न देकर नित्य सहज ही मेघके प्रति अनन्य प्रेम रखता है—

रटत-रटत रसना लटी, तृषा सूखिगे अंग।
तुलसी चातक प्रेम को, नित नव नूतन रंग॥
बरषि परुष पाहन पयद पंख करौ टुक टूक।
तुलसी परी न चाहिऐ, चतुर चातकहि चूक॥
चढ़त न चातक चित कबहुँ प्रिय पयोद के दोष।
तुलसी प्रेम पयोधि की ताते माप न जोख॥

—(दोहावली)

चातकके इस आदर्शके अनुसार जो प्रेमास्पद भगवान्‌की राजीमें ही परम प्रसन्न है, वही प्रेमी है और हमारे लिये वही आदर्श है।

× × ×

यह सत्य है कि मनुष्य अपने साधन या पुरुषार्थसे भगवान्‌को अथवा भगवत्प्रेमको प्राप्त नहीं कर सकता। भगवत्कृपासे ही प्रेमकी प्राप्ति होती है। बस, दो बातें होनी चाहिये—प्रेम प्राप्त करनेकी अदम्य तथा अनन्य लालसा

तीव्र उत्कट उत्कण्ठा और भगवत्कृपामें अडिग विश्वास। जहाँ उत्कण्ठा और विश्वास मिल जाते हैं, वहाँ भगवत्प्रेम-की प्राप्ति सहज हो जाती है। प्रेमका यथार्थ स्वरूप क्या है, न तो वह बुद्धिमें आता है, न वाणीमें आता है; वह तो भगवत्कृपासे ही प्रेमीके मनमें स्फुरित होता है।

× × ×

संसारकी किसी वस्तुमें जरा भी आसक्ति नहीं होनी चाहिये--गयी वस्तुमें, वर्तमान वस्तुमें और भविष्यकी कल्पित वस्तुमें भी। शरीरके आरामका ध्यान भी हानि-कर है; कभी आराम न मिलनेपर इससे दुःख हो सकता है। व्यवहारमें अपनी बातका हठ न करे, दूसरेकी निर्दोष बातको सदा मान दे; सबका सम्मान करे--स्वयं मान न चाहे; वर्ताव वैसा ही अच्छा करे, जैसा दूसरोंसे अपने लिये चाहता है; किसी भी प्राणि-पदार्थ, स्थिति, अवस्था, वस्तुसे कोई भी आशा न रखे, पर दूसरेकी निर्दोष आशाको यथासाध्य पूरा करता रहे। सबमें भगवद्भाव रखे; सबसे यथायोग्य सम्मान, प्रेम तथा हितका सच्चा वर्ताव करते हुए सबको सुख पहुँचावे। इस प्रकार करनेसे व्यवहार शुद्ध हो जाता है। व्यवहारमें गड़बड़ी चाहसे आती है; अतः किसीसे कभी कुछ चाहे ही नहीं।

× × ×

भजनमें संतोष न होना, कमी दीखना तो गुण ही है, परंतु भजन होना चाहिये अवश्य। भजन न होनेपर मनका दुःखी रहना सौभाग्यकी बात है। 'भजन न होनेका दुःख' ही भजन कराता है। यह भजनके अभावका दुःख यदि पराकाष्ठाको पहुँच जाय, तब तो भजन उसका जीवन ही बन जाता है। पर भजन होता है—मनसे। मन जब संसारके प्राणि-पदार्थोंमें कभी अधिक आसक्त होकर उनके सुख-दुःखका अधिक अनुभव करने लगता है, तब भजन कम हो जाता है अथवा छूट जाता है। इस अवस्थामें यदि भजन न होनेका दुःख भड़क उठता है, भजन न होनेकी पीड़ा जाग उठती है तो भजन पुनः होने लगता है और सुन्दर होता है। 'तद्विस्मरणे परमव्याकुलता'—भगवान्‌को भूल जानेपर परम व्याकुलता होनी चाहिये। यही तो भक्ति है।

× × ×

सबसे पहली और सबसे आखिरी बात तो एक ही है—एक भी क्षण हमारे जीवनका प्रभुकी पवित्र तथा मधुर-मधुर स्मृतिसे रहित नहीं बीतना चाहिये। भगवान्‌की यह वाणी याद रहे—'सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर।'

प्रकाशक—भगवानदास सिहानिया, १८७ दादीसेठ अग्यारी लेन बम्बई-२

मुद्रक—रायप्रिंटिंग वर्क्स, सी० के० ६३/७९ छोटी पियरी, वाराणसी